॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

गौड़ीयग्रन्थगौरव:—

प्रकाशितग्रंथसंख्या—११४

श्रीमाधवेन्द्रपुरी एवं वल्लभाचार्य्य

लेखक:—

श्रीराधाश्यामवागची

हिन्दीभाषानुवादक:—

श्रीविश्वम्भरगोस्वामीजी (वृन्दावन)

सम्वत्—२०२०

मूल्यम्— २५ नये पैसे

प्रकाशक: व मुद्रक:—

कृष्णदासबाबा

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर

भूमिका

—०—

परमपूज्य पाद श्रीमाधवेन्द्रपुरी एवं बल्लभाचार्य जी की जीवनी के सम्बन्ध में नाना रूप में भिन्न २ ग्रंथों में वर्णन हैं। किंतु श्रृंखलाबद्ध एवं निष्पक्ष इस संबंध में कोई ग्रंथ नहीं है। उस अभाव को दूर करने के लिये अपनी क्षुद्र मानस की आमोद प्रिय वृद्धि पर आश्रित होकर सर्व साधारण के उपकार के हेतु अनेक दिनों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये इस कार्य में अग्रसर हुआ हूं। यह जो कुछ भी मैंने सफलता प्राप्त की है वह बुद्धिमान भक्तों के ऊपर विचार करने के भार छोड़ दिया है।

कुछ कठिन विषय के संकलन का कार्य बहरमपुर निवासी परम भागवत श्रीयुक्त भगवानदास गुजराती महाशय की व्यक्तिगत एवं उनकी दी हुयी गुजराती, हिन्दी, संस्कृत एवं ब्रजभाषा प्रभृति ग्रंथों की सहायता यदि वे न करते तो मैं यह कार्य करने में असमर्थ था।

श्रीमाधवेन्द्र पुरी एव वल्लभाचार्य के संवंध में कतिपय ग्रंथ आलोचना पूर्वक देखे। जिन में अनेकों स्थान स्व कपोल कल्पित है।

विद्वान गणों के आकर्षण के निमित्त एक दो ग्रंथों के नाम तथा स्थान निम्नलिखित में उल्लेख हुआ है जैसा—

(१) गुसाई जी (विट्ठलनाथजी) की २५२ वैष्णवन की वार्त्ता नामक ग्रंथ में २५१ की वार्ता में श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को उक्त गुसाई जी (विट्ठलनाथ जी) के शिष्य रूप में वर्णित हैं। एवं अनेक प्रकार के स्वकपोल कल्पित भाव से उल्लि-

खित है। माधवेन्द्रपुरी के मृत्यु के जितने वर्ष पीछे गुसाईजी का जन्म हुआ है उससे उनके शिष्य होना प्रमाणित नहीं होता है।

(२) (क) बल्लभाचार्य की निज वार्ता ग्रंथ में जो लिखा है वि०सं० १५४८ में वल्लभाचार्य ने श्रीबृन्दाबन पधार कर श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव को सुवोधिनी नामक ग्रंथ सुनाया किंतु श्रीचैतन्यदेव का जन्म वि० सं० १५४२ में हुआ एवं वे वि० सं० १५७२ के पूर्व वृन्दाबक नहीं गये। इस लिये उक्त विक्रम सं० १५४८ की सारी बात अमान्य (अलीक) है।

(ख) उक्त निजवार्ता ग्रंथ में श्रीबल्लभाचार्य व जीवगोस्वामी के बीच जो बाद विवाद (वाद-विसम्बाद) का प्रसंग है उसका समय वि० सं० १५४८ उल्लिखित है। श्रीजीवगोस्वामी का जन्म वि० सं० १५६८ में है और वि० सं० १५९१ में उनका बृन्दावन आगमन है। उस समय श्रीवल्लभाचार्य इस पृथ्वी पर वर्त्तमान नहीं थे।

(ग) उक्त निजिवार्ता में और भी उल्लेख हैं कि श्रीवल्लभाचार्य जब श्रीधाम द्वारका तीर्थ यात्रा में गये थे, तब वहां उनकी मूर्ति नहीं थी। और बुढ़ाना नामक एक भक्त उस मूर्ति को डाकोर जी नामक एक ग्राम में ले गया था। तब इस मन्दिर में कोई मूर्ति न होने के कारण से वहां के पण्डों ने वल्लभाचार्य से अन्य मूर्ति स्थापन करने का अनुरोध किया। उन्होंने भूमि के गर्भ में से एक मूर्ति बाहर निकाल कर उस मन्दिर में स्थापना की। किंतु यह बात सत्य नहीं है। कारण कि यह घटना उनके जीवन के ३०० वर्ष पूर्व पहले घटी थी। तब श्रीबिल्बमङ्गल ठाकुर महाशय विद्यमान थे। उनके नाम के स्थान पर बल्लभाचार्य का नाम कल्पित कर दिया गया।

(३) (क) बल्लभाचार्य बैठक चरित्र नामक ग्रंथ में यह सब

विषय लिखा है। उसे पढ़ कर बालकों की सी बात मालूम होती है। उदाहरण स्वरूप कई एक प्रसंग लिखे जाते हैं जैसे—

दूसरी बैठक में उल्लेख है कि श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने एक समय अपने मन में विचारा कि मैं श्रीनाथ जी की सेवा पूजा करूँगा। किंतु अर्न्तयामी भगबान श्रीनाथ जी ने उनको आदेश दिया कि यह तुम्हारा अधिकार नहीं है। वह अधिकार वल्लभाचार्य का है। तुम्हारा भजन का अधिकार है।

(ख) चौथी बैठक में उल्लेख है कि जब गोपालभट्ट गोस्वामी नारायण-शिला की सेवा पूजा करते थे, तब उनकी सेवा करते करते एक दिन उनकी मूर्ति पूजा की प्रबल इच्छा हुयी। यह श्री-चैतन्यदेव के सामने प्रगट की और वे अपनी असमर्थता प्रगट करते हुये बोले कि—"बल्लभाचार्य की इच्छा करने पर नारायण शिला से स्वरूप मूर्ति प्रगट कर सकते हैं।" इसके बाद भट्ट गोस्वामी ने अपनी इच्छा वल्लभाचार्य के सामने व्यक्त की। उन्होंने उस शालिग्राम शिला में से श्रीराधारमण की मूर्ति के दर्शन कराये। उक्त प्रसंग सम्पूर्ण साम्प्रदायिक एव कल्पित है। जिस समय शालिग्राम शिला में से विग्रह प्रगट हुआ उस वि० सं० १५९२ में प्रगट रूप में बल्लभाचार्य इस धाम में ही नहीं थे।

(ग) तेरहवी बैठक में उल्लेख है कि जो श्रीराधिका ने कृष्ण प्रेमामृत ग्रंथ लिखकर बल्लभाचार्य को दिया। उनसे केशव काश्मीरी तथा चैतन्यदेव ने यह ग्रंथ मांगा। किंतु यह ग्रंथ श्री-चैतन्यदेव को दिया। यह भी स्वकपोल कल्पित है। क्यों कि ब्रजधाम में बल्लभाचार्य और चैतन्य देव का कभी भी मिलन नहीं हुआ।

जब चैतन्यदेव ब्रजधाम में तीर्थ तात्रा करने को गये थे तब वे चारनाट में थे। जब चैतन्यदेव ब्रज में लौट कर आये तब वे

प्रयाग के पास अरैल ग्राम में थे। उस समय बल्लभाचार्य (वल्लभ भट्ट) चैतन्यदेव को निमंत्रण कर अपने घर ले गये।

(घ) दसवीं बैठक में उल्लेख है कि श्रीचैतन्यदेव ने गोवर्द्धन में मानसी गंगा के तट पर भजन आरम्भ करने के समय यह संकल्प किया जब तक यह गंगा जल दूध के रूप में परिवर्तित नहीं होगा तब तक इसी स्थान पर भजन करेंगें। इस प्रकार ६ मास व्यतीत होने पर बल्लभाचार्य ने वहां आकर जैसे ही अपने कमण्डल में से जल के छींटा उनके नेत्रों पर दिये वैसे ही उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हुयी और उस जल में दूध के दर्शन करने लगे। यह सब अमान्य कारण है। क्यों कि चैतन्यदेव ने इस स्थान पर केवल एक रात्रि वास किया।

(ङ) इक्कीसवी बैठक में उल्लेख है कि भाण्डीरवन में बल्लभाचार्य के साथ माधवेन्द्रपुरी के परम गुरु श्रीव्यासरायतीर्थ के साथ अनेक आलोचना के बाद व्यासराय जी ने उनको शिष्य होने के लिये कहा। तब उनने विचार करने के लिये एक दिन का समय मांगा। इस बीच में रात्रि के समय बल्लभाचार्य के कई एक शिष्यों ने व्यासराय जी को मुगदर द्वारा मारा। फिर व्यासराय जी बल्लभाचार्य के शरणापन्न हुये। यह सब बात जिसने लिखी है उन्होंने निज सम्प्रदाय के गौरव वृद्धि को छोड़ कर और कोई सत्य कारण नहीं है। किंतु अन्य प्रामाणिक ग्रंथों की आलोचना से इस गौरव रक्षा नहीं हो सकती सम्भवतः यह समझने का उन्होंने विचार नहीं किया।

जो हो निज सम्प्रदाय के उत्कर्ष के लिये किसी महापुरुष को ऐसी अयुक्ति पूर्ण प्रमाणों के आधार पर ठहरान ज्ञानवान लेखकों का उचित नहीं है। यह बुद्धिमान पाठक विवेचना करेगें।

श्रीव्यासराय तीर्थ के शिष्य नारायणेन्द्र तीर्थ के निकट श्री-

वल्लभाचार्य ने सन्यास ग्रहण किया। इस लिये वे वल्लभाचार्य के परम गुरु हुये। श्रीनाथ जी की प्रगट वार्ता एवं गोवर्द्धन नाथ की प्रगट वार्ता नामक इन दो ग्रंथों में श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को बड़े ही हीन भाव से वर्णन किया है। वल्लभाचार्य के जीवन काल में उनकी जीवन के संबंध में उनके किसी शिष्य एवं पुत्र की कोई लिखित पुस्तक नहीं है। किंतु बाद में उनके पुत्र विट्ठलनाथ के जीवन कालमें उनके [विट्ठलनाथजी] गदाधरदास नामक एक शिष्य ने सम्प्रदायप्रदीप एवं गोपालदास नामक अन्य शिष्य ने बल्लभाख्यान नामक ग्रंथ की रचना की ऐसा उल्लेख है। किंतु वह भी मिथ्या कारण है। गदाधरदास ने श्रीवृन्दाबन में गोविन्दजी के मन्दिर में बैठकर यह ग्रंथ लिखा था। यह उनके निजी ग्रंथ में स्वयं उनका कथन हैं। किंतु यह मन्दिर वि० सं० १६४७ में जयपुर के राजा मानसिंह द्वारा निर्मित है। उसके पूर्व ही विट्ठलनाथ जी ने यह धाम त्याग कर दिया।

गोपालदास के उस बल्लभाख्यान रचना संबंध में पुष्टि सम्प्रदाय के ग्रंथ में लिखा हुआ है कि यह गोपालदास पहले गूंगे थे। किंतु विट्ठलनाथ जी की कृपा से यह बोलने लगे और इस समय उन्होंने विट्ठलनाथ जी के सामने 'वल्लभाखबान' की रचना की। उक्त ग्रंथ के ६ वे आख्यान में विट्ठलनाथ जी के सप्तपुत्र और सप्तपुत्रबधू का उल्लेख है। किंतु उनके जीवन काल में उनके कनिष्ट पुत्र घनश्याम जी का विवाह नहीं हुआ था। इसलिये यह प्रमाणित होता है कि यह विट्ठलनाथ जी के तिरोभाव हो जाने के पीछे यह ग्रंथ लिखा गया है।

वल्लभाचार्य की सम्प्रदाय के जितने भी ग्रंथ हैं उनमें उनके जन्म सम्बन्ध में दो मत हैं। एक मत से उनका जन्म वि०

सं० १५२६ और दूसरे मत में वि० सं० १५३५ में है। किंतु वि० सं० १५२६ के बारे में प्रमाण मिलते हैं वल्लभाचार्य ने काशी में माधवेन्द्रपुरी के निकट विद्या अभ्यास किया इसके बहुत से ग्रंथों में प्रमाण है एवं पुरीजी वि० सं० १५३५ में काशी छोड़ कर ब्रजधाम में चले गये थे इसके बहुत प्रमाण हैं। इस लिये उनका विद्याभ्यास उनके पूर्व ही हुआ था। अतएव दोनों मतों के बीच में पूर्व मत ही प्रबल है।

वि० सं० १५३५ में उनका जन्म हुआ यह पहले द्वारकेश लाल जी [मूल पुरुष के लेखक] ने लिखा है। इसके पूर्व और किसी ने नहीं लिखा। गोकुलनाथ जी के शिष्य गणों के ग्रंथों में वि० सं० १५२६ में देखा जाता है।

द्वारकेशलाल जी का वि० सं० १५३५ में उल्लेख करने का कारण अनुमान होता है कि यह केवल बल्लभालार्य की माहात्म्य बृद्धि के लिये है एसा जानना। श्रीमाधवेन्द्र पुरी के गोपालदेव (श्रीनाथजी) का प्रकट १५३५ वि० संवत में जिस मास एवं जिस दिन जिस समय कहा गया है उन्होंने बल्लभाचार्य जी का प्रगट लीला ठीक उसी रूप में लिखा है।

रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बाकाचार्य एवं विष्णुस्वामी थे चार वैष्णव सम्प्रदाय के बीच में बर्तमान बल्लभाचार्य की पुष्टि सम्प्रदाय विष्णुस्वामी जी परम्परा में कही गयी है।

पहले बल्लभाचार्य जी विष्णुस्वामी संप्रदाय में थे इसका उनके बालकाल के जीवनचरित्र में प्रमाण है किंतु बाद में जो सुबोधिनी नामक भागवत की टीका रचना की उसमें तृतीय स्कंध "भक्तियोगं चतुर्विधं" इत्यादि श्लोक की टीका में उन्होंने विष्णुस्वामी संप्रदाय के मतावलम्बी को तामसी प्रकृति वाला कहा है और अपने को निगुर्ण उपासक कह कर विष्णुस्वामी संप्रदाय से अलग रखा है।

वल्लभाचार्य एवं माधवेन्द्रपुरी की सम्पूर्ण जीवनी न प्राप्त हो सकने पर भी जो पाईगयी सत्य प्रतीत हुयी वही लिखी गयी है।

बुद्धिमान पाठक गणों से यह सविनय प्रार्थना है इस सफल ग्रंथ में वह मूल मिथ्या व प्रमाद मालूम पड़े तो उसे कृपा कर सूचित करें तो हम उनके बड़े कृतज्ञ होंगे।

जो इस ग्रंथ के मूल उत्साही है तथा जो मेरे परम मित्र हैं उनके विशेष अनुरोध से यह ग्रंथ की भूमिका लिखी गयी है। किंतु किसी उपयुक्त व्यक्ति के ऊपर यह भार होता तो पाठक गण विशेष लाभ उठाते।

इति—

वहरमपुर, मूर्शिदावाद
२७ शे आषाढ़ १३४४

विनीत
श्री राधाश्याम बागची
व्याकरण तीर्थ, काव्यरत्न
वहरामपुर—मुर्शिदावाद

❀ श्रीगुरुप्रणाली ❀

श्रीकृष्णो भगवान् ब्रह्मा नारदो बादरायणः ।
श्रीमध्वः पद्मनाभश्च नृहरिर्माधवश्च सः ॥
अक्षोभ्यो जयतीर्थश्च ज्ञानसिन्धुर्दयानिधिः ।
विद्यानिधिश्च राजेन्द्रो जयधर्ममुनिस्ततः ॥
पुरुषोत्तमो ब्रह्मण्यो व्यासतीर्थश्च तस्य हि ।
लक्ष्मीपतिस्ततः श्रीमान् माधवेन्द्रयतीश्वरः ॥

(जय गौर चन्द्र)

श्री माधवेन्द्र पुरी एवं वल्लभाचार्य्य

यस्मै दातुं चोरयन् क्षीरभाण्डं गोपीनाथः क्षीरचोराभिधोऽभूत ।
श्रीगोपालः प्रादुरासीद्वशः सन् यत्प्रेम्णा तं माधवेन्द्रं नतोऽस्मि ॥

चैः चः ।

श्रीमाधवेन्द्र पुरी भक्ति कल्पतरु का प्रथम अंकुर, उन्होंने विशुद्धा भक्ति जगत में प्रचारित की। उनके सुमधुर आख्यान पाठ करने से हम लोगों को विदित होगा कि वे नित्य ही भक्ति-रस में विभोर रहते थे। कृष्णप्रेम में उन्मत्त रहते थे। वे कभी हँसते तथा कभी रोते और कभी श्याम मेघ को कृष्णरूप समझ कर चेतना शून्य हो जाते।

"भक्तिरस के सूत्रधार माधवेन्द्र आदि"—श्रीचैतन्य महाप्रभु ने जगत में जिस भक्ति नाटक की अवतारणा की थीं उसके आदि सूत्रधार श्रीमाधवेन्द्र पुरी हैं। जिस तरह श्रीरामानुजाचार्य्य के विशिष्टाद्वैतवाद के प्रचार पूर्व श्रीयामुनाचार्य्य ने जो आभास दिया था, जिस प्रकार श्रीशंकराचार्य के अद्वैतवाद प्रचार के पूर्व श्रीगौड़पादाचार्य ने उनका तात्पर्य वर्णन किया था—उसी प्रकार श्रीमहाप्रभु के द्वारा प्रचारित भक्ति सुधा के वितरण के पूर्व श्री माधवेन्द्र पुरी ने अपने जीवन में भक्ति की बाढ़ को बृहद्रूप में प्रवाहित किया था।

माधवेन्द्र पुरी की जो गहरी प्रेम की पराकाष्ठा गहराई है वह महाप्रभु के अतिरिक्त अन्य और कहीं देखी नहीं जाती, जब वे

कृष्ण नाम श्रवण कर मूर्छित होते थे तब उनकी नाक के सामने रुई रख कर यह देखा जाता था कि जीवित हैं या नहीं। बाद में श्री महाप्रभु के सम्बन्ध में भी ऐसी ही घटना देखने में आयी। माधवेन्द्र हर समय उदासीन तथा मौन रहते थे। सांसारिक प्रसंगों के भय से अन्य किसी का साथ नहीं करते थे। उनका वैराग्य बड़ा ही उच्च कोटि का था।

गोपीभाव में श्रीकृष्ण की उपासना के यह प्रथम आचार्य हैं। महाप्रभु द्वारा अनुशीलित यह उपासना पद्धति संसार में प्रचारित हुयी। श्री माधवेन्द्र बराबर श्री कृष्ण के विरह में कातर रहते थे। महाप्रभु के शेष लीला में भी हम देखते हैं कि वे राधा-भाव में विभोर होकर नित्य श्रीकृष्ण के विरह में दुःखी रहते थे। वे जैसे स्वयं मूर्तिमान् विप्रलम्भ रस स्वरूप थे।

—२—

रामानुज, निम्बार्क, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य—ये चार लोग धर्म के प्रवर्तक हैं। इन चारों ने ब्रह्मसूत्र प्रभृति शास्त्रों पर भाष्य किया है। और वैष्णव धर्म का प्रचार किया है। विभिन्न विषयों पर इन लोगों का मतभेद था, किन्तु श्रीविष्णु ही परतत्व है, इस विषय में एक मत थे। जीव और ब्रह्म में अभेद को ये स्वीकार नहीं करते हैं। भक्ति ही जीव के कल्याण का साधन है यही सबों ने कहा है।

मध्वाचार्य १२ वीं० श० में अवतीर्ण हुये। इनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित है। श्री माधवेन्द्रपुरी इस माध्व सम्प्रदाय के एक आचार्य थे। श्रीमध्वाचार्य के शिष्य प्रशिष्य परम्परा में कई महापुरुषों के बाद माधवेन्द्र पुरी का स्थान है। नीचे लिखी उद्धृत पंक्तियों में श्री माध्व से लेकर माधवेन्द्र पुरी पर्यन्त आचार्य गणों के नाम हैं—

श्री मध्वः श्री पद्मनाभ श्रीमन् नृहरिमाधवान्
अक्षोभ्य—जयतीर्थ—श्रीज्ञानसिन्धुदयानिधीद् ।
श्रीविद्यानिधि—राजेन्द्र—जयधर्म्मानुक्रमाद वयम्
पुरुषोत्तम—ब्रह्मण्य—व्यासतीर्थांश्च संस्तुमः ।
ततो लक्ष्मीपतिं श्रीमन्माधवेन्द्रञ्च भक्तितः

इससे विदित होता है कि व्यास तीर्थ के शिष्य लक्ष्मीपति एवं लक्ष्मीपति के शिष्य श्रीमाधवेन्द्र थे। व्यासतीर्थ नामक व्यक्ति इस सम्प्रदाय में एक महान विद्वान थे। उन के रचित वहुत से ग्रंथ हैं।

"व्यासयोगीचरित्र" नामक ग्रंथ में यह पाया जाता है कि वि० सं० १५०२ में व्यास तीर्थ का जन्म तथा वि० सं० १५६० में मृत्यु हुयी। व्यासतीर्थ माधवेन्द्र के परम गुरु हुये और माधवेन्द्र उम्र में वड़े थे। इससे यह अनुमान होता है कि माधवेन्द्र ने अधिक अवस्था में सन्यास ग्रहण किया था।

श्री माधवेन्द्र के सभी शिष्य नित्य सिद्ध थे। ईश्वरपुरी, परमानन्दपुरी, रामचंद्रपुरी, वगैरह सन्यासी गण इनके शिष्य थे। बाद में महाप्रभु ने सांसारिक लीला के समय ईश्वरपुरी से दीक्षा ग्रहण की। अतः यह निश्चय होता है कि श्रीमाधवेन्द्रपुरी के वाद ही महाप्रभु का जन्म हुआ है। माधवेंद्र पुरी को यह आभास हो गया था कि शीघ्र ही भगबान जगत में प्रकट होंगे। यह बात उन्होंने ईश्वर पुरी से कही। वायुपुराण के वाक्य का उल्लेख करते हुए उन्होंने ईश्वर पुरी से कहा—

कलेः प्रथमसन्ध्यायांम् लक्ष्मीकान्तो भविष्यति ।
दारुब्रह्मसमीपस्थः सन्यासी गौरविग्रहः ॥

"कलियुग की प्रथम संध्या में भगबान लक्ष्मीकांत अपनी

गौर कांति को प्रगट करके संन्यास ग्रहण कर पुरुषोत्तम क्षेत्र में श्री जगन्नाथ के समीप रहेगें।"

३

साढ़े चार सौ बर्ष पूर्व की वात है जब वि० सं० १५३५ था। इसी बर्ष श्री माधवेन्द्र पुरी ने अपने काशीधाम में विद्यालय का भार श्री व्यासतीर्थ के बिशिष्ट शिष्य श्री माधब सरस्बती को सौंपा तथा तीर्थ दर्शन की इच्छा से चल पड़े।

माघ मास के प्रथम में ही वे ब्रजधाम में आये। मथुरा में बिश्राम घाट× पर उन्होंने स्नान किया। और केशवदेब के दर्शन कर परम आनंद प्राप्त किया। इसके बाद श्री माधवेन्द्र श्री राधा कृष्ण की समस्त लीला भूमि के दर्शन करते करते श्रीगोबर्द्धन आये। उस समय उन्हें प्रेम में (दिशा ध्यान) ध्यान संधान) नहीं था। कब गिरते थे, और कब उठते थे, इस प्रकार रोमाञ्चित होकर पुलक शरीर से चलते थे।

फिर गिरिराज की परिक्रमा करके गोबिन्द कुण्ड में स्नान किया और एक पेड़ के नीचे बैठ गये। उस समय सन्ध्या हो गई थी। माधवेन्द्र की अयाचित बृत्ति थी। कोई यदि कुछ देते तो ग्रहण करते, अथवा उपवास ही रह जाते। उदर भरने के लिये उन्होंने कभी किसी से याचना नहीं की। और वे अनन्य भाव से श्रीकृष्ण नाम का जप करते थे। ऐसे ससय में एक श्याम वर्णका परम सुंदर १०, ११ वर्ष का बालक वहां आया और उन्हें एक हाण्डी में दूध दे कर बोला ! कि "आप सम्पूर्ण दिन निराहार रहे

× इस केशव भगवान् के मंदिर तथा विश्रामतीर्थ दोनों स्थल पर संवत् १७२६ अब्द में औरंगजेब वादशाह ने नष्ट भ्रष्टकरके मस्-जिद् निर्म्माण किया। वर्तमान दोनो स्थल में नूतन प्रस्तुत हैं।

अब दूध पान कीजिये" बालक के उस परम मनोहर रूप के दर्शन कर उनका शरीर पुलकित तथा नयन मुग्ध हो गये। उन्होंने पूछा कि तुम्हें किस तरह मालूम पड़ा कि मैं यहां उपवासी हूँ। मेरी माता यमुना जल लेने जाते समय आपको देख गयी थी, उन्होंने यह दूध की हांडी मुझे देकर भेजी है।" यह कह कर बालक समय की प्रतीक्षा न कर वहां से चला गया।

पुरी जी ने उस दूध को पान कर उसके अपूर्व स्वाद में मुग्ध हो गये। यह दूध क्या स्वर्ग का अमृत है, यह वह समझ नहीं सके। बालक का रूप तथा दूध के अपूर्व स्वाद का स्मरण करते २ सो गये और एक अद्भुत स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि वह श्याम सुन्दर बालक पुनः उन के निकट आया और उनका हाथ पकड़ कर कुंजों में ले गया, और उनसे कहा—देख माधवेन्द्र! मेरी स्वरूप मूर्त्ति चार सो वर्षों से अधिक समय से ही इस स्थान में इस गिरिराज के ऊपरी भाग के वनमें जमीन में प्राथित गढ़ी है। मैं ही गोपाल हूँ! और मैंने ही इस गोवर्द्धन को धारण किया था। यवनों के अत्याचार के समय मेरे पुजारी लोगों ने विग्रह को मिट्टी में दबाकर भाग गये। उस समय से मैं मिट्टी के नीचे दबा हूँ। पहले इस स्थान पर मेरा मन्दिर था। तुम मेरे विग्रह को मिट्टी में से निकाल कर पुनः उस स्थान पर स्थापित करो।

यह बात कहते २ बालक उन्हें गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर ले गया और स्थान दिखा कर अन्तर्ध्यान हो गया। अति शुभ स्वप्न देख कर पुरी जी परम प्रसन्न हुये।

पुरी रात की नींद भंग हुई। जाग कर इधर उधर उहोंने देखा और कहा कोई भी तो नहीं है।

विचारने लगे कि हाय ! श्यामसुन्दर स्वप्न दर्शन देकर चले गये। और उसी समय नेत्रों से प्रेम अश्रु बहने लगे। और यह विचारने लगे कि कि मैं किस प्रकार से गोपाल की मूर्ति को बाहर कर स्थापित करूंगा।

धीरे २ प्रातःकाल हुआ। प्रातः काल वे पास के आनौर ग्राम में जाकर वहां के व्रजवासियों में अपने स्वप्न का बृतान्त बताया। उनने भी यह स्वप्न की बात सुन कर बड़ा आनन्द पाया। तब सब एकत्रित होकर पुरी जी के सहित गोवर्द्धन के ऊपर स्वप्न में बताये गये स्थान पर गये। और वहां मिट्टी के नीचे श्यामसुन्दर की मूर्ति प्राप्त की।

शीघ्र ही यह समाचार सब जगह फैल गया। निकटवर्ती ग्रामों से व्रजवासियों के समूह आ आकर आनन्द से श्रीमूर्ति का दर्शन करने लगे। वहां उन्होंने एक छोटी पर्ण कुटी बनाई। वि० सं० १५३५ वैशाख कृष्णा ११ के दिन श्री गोपाल देव की मूर्ति का अभिषेक करा, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैविद्य आदि से यथाविधि पूजा की। तब चारों दिशा व्रजवासियों की जयध्वनि में गूंज उठी। और सब के मन में एक अपूर्व भाव की सृष्टि हुयी। तब माधवेन्द्र पुरी श्रीगोपाल जी को एक छोटे मंदिर में प्रतिष्ठित करके वहीं निवास करने लगे। दिन रात गोपाल की सेवा कार्य की चिंता में निरत रहते थे। अच्छी सामिग्री जुटा कर गोपाल को भोग लगाते थे। इस प्रकार पुरी जी के मङ्गल मय का नया अध्याय चलने लगा।

एक समय पुरी जी ने समस्त व्रजवासियों को इकट्ठा करके कहा, "गोपाल जी का अन्नकूट का आयोजन हो। इस प्रकार का आदेश पाकर व्रजवासी गण महान आनंद से दही, दूध, घृत, चीनी इत्यादि नाना प्रकार की भोग की सामिग्री इकट्ठी

करने लगे। वहीं पर ब्रजवासी ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी भी भोग तैयार करने लगे। सब सामिग्री तैयार होने पर पुरी जी ने श्री गोपाल को उसी समय सब भोग लगाया।

दूर दूर से बहुत से लोग इस उत्सव में योगदान करने आये। जिसकी जैसी सामर्थ थी, उसी के अनुसार नाना प्रकार के वस्त्र, आभूषण इत्यादि श्री गोपाल देव के भेट के लिये लाये। वे सब दर्शन कर तथा प्रसाद ग्रहण कर बड़े आनन्दित हुये।

४

पुरीराज एकान्तसेवी एक निर्लोभी भक्त थे। वे निन्द्रा एवं भोजन की चिन्ता छोड़ कर एकाग्र भाव से श्री गोपाल देव की सेवा करते थे। नित्य गोपाल देव की सेवा कर तथा लोगों को भोजन करा कर इसके बाद थोड़ा सा भोजन करके जीवन धारण करते थे।

इसके कुछ दिन बाद रामदास तथा नरहरिदास ब्राह्मण गोड़ देश से आये। वे ब्रजधाम के दर्शन करके गिरिराज गोवर्द्धन में आये। पुरीराज से मिलने के बाद उन लोगों ने उनसे दीक्षा ग्रहण करने की एकान्त इच्छा प्रगट की। उन्होंने उन्हें उपयुक्त समझ करके दीक्षा देकर उन्हें गोपाल देव की सेवा में लगा दिया।

इतने दिन तक इस स्थान में एक ही घर था। उसी घर में श्रीगोपालजी की मूर्ति विराजमान थी। इसी समय पुजारी तथा यात्रीगणों के ठहरने के लिये सूर्य्यकुंड के ऊपर और गृहादि बने। धीरे २ यह स्थान एक गांव के रूप में होगया। इस गांव का नाम गोपालपुर हुआ। बाद में आगरा निवासी भाग्यवान् श्री पूर्णमल छत्री राजपूत ने उस समय श्रीगोपाल देव का एक पक्का मन्दिर निर्माण करा दिया।

इस प्रकार श्रीमाधवेन्द्र आनन्द से कृष्णसेवा करने लगे। धीरे २ दो वर्ष व्यतीत हो गये। वाद में एक दिन रात्रि में श्री गोपाल देव ने पुरी जी को स्वप्न में आदेश दिया कि अनेक दिन पर्यन्त मिट्टी के नीचे दबे रहने से मेरे शरीर में अत्यन्त पीड़ा मालूम होती है। इसलिये पुरी जी नीलाचल से चंदन मंगा कर श्री अंग में लेप करे तव उससे श्री अंग शीतल होगा।

पुरी जी की निन्द्रा भङ्ग होते ही उन्होंने रामदास तथा नरहरि को जगाया और कहा वे चंदन लाने नीलाचल जा रहे हैं। गोपाल की सेवा के सम्बन्ध में उन्होंने उन लोगों को अनेक आदेश दिये। और कहा तुम यत्न पूर्वक नियमित भावना से गोपाल की सेवा करना। और जो समुदय भोग के लिये धन एकत्रित हो, उसका भोग लगा कर ब्रजवासी गणों को वितरण करना। कुछ एकत्रित न करना। कुम्भनदास ब्रजवासी बड़े गवैया थे। उनसे अनुरोध कि वे नित्य कीर्त्तन गान कर गोपाल की प्रीति वर्धन करें। पुरी महाशय गोपाल के आदेश से उनकी संतुष्टि के निमित्त उन्हें छोड़कर जा रहे हैं। किंतु उनके प्राण गोपाल को छोड़ कर जाने की इच्छा नहीं रखते।

इस प्रकार वि० सं० १५३८ में श्री माधवेन्द्र पुरी ने श्री नीलाचल धाम की यात्रा की। उनने निरंतर कृष्ण प्रेम में विभोर होकर भूक प्यास की भी चिंता नहीं की, नित्य ही गोपाल की सेवा उत्तर दायित्व (सम्भार) पूरा करने के लिये आनन्द पूर्वक चले जा रहे थे। शक्ति होने पर कही विश्राम करते। इस प्रकार यात्रा कर रहे थे। वाह्य जगत की ओर उनका ध्यान नहीं था। इस प्रकार चलते २ वे बंगाल में शांतिपुर पहुँचे। एक वृक्ष के नीचे बैठ कर रोमांचित होकर श्रीकृष्ण नाम कीर्तन करने लगे। उनका अलौकिक कृष्ण प्रेम देख कर बहुत से भक्तगण उस स्थान पर

एकत्रित हो गये। श्रीमाधवेंद्र को बड़े ही दैन्य भाव से प्रणाम कर उन्हें यत्न पूर्वक अपने घर ले आये। माधवेंद्र अपने परम वैराग्य भाव से किसी के घर कभी नही जाते किंतु आचार्य प्रभु की भक्ति के वशीभूत होकर उनके घर गये।

इस समय आचार्य प्रभु की उम्र ४६ वर्ष की थी। क्यों कि उनका जन्म स० १५६२ माघ शुक्ला ७ में हुआ तव भी उन्होंने विवाह नहीं किया। अविवाहित रहकर ही कृष्ण सेवा की यही उनका संकल्प था।

तव दोनों में बात चीतें प्रारम्भ हुयी। आचार्यप्रभु ने पुरी-गोस्वामी से पूछा जीव का क्या कर्तव्य है? श्रीमाधवेन्द्रजी ने कहा कृष्ण सेवा ही जीव का कर्त्तव्य है। कृष्णसेवामें ही अलौकिक शक्ति है। इसके द्वारा जीव नित्य भगवत् सांनिध्य प्राप्त कर सकता है।

इसके वाद पुरी राज ने विशाखा निर्मित चित्र के दर्शन करके परम प्रेमाविष्ट हुये। वे कभी हंसते, कभी रोते और कभी नृत्य करते। इस प्रकार कुछ क्षण व्यतीत होने पर उनको वाह्य ज्ञान हुआ। तब वे आचार्य प्रभु से कृष्ण प्राप्ति का सुलभ उपाय वर्णन करने लगे और बोले—वेटा! तुम शुद्ध प्रेम पात्र हो। राधिका का चित्र और निर्माण करो, एक युगल सेवा करो और वोले—

श्याममेव परं रूपं पुरी मधुपुरी वरा।
वयकैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः॥

श्याम रूप ही श्रेष्ट रूप है। मधुपुरी श्रेष्ट पुरी है। किशोर अवस्था श्रेष्ट है-आदिरस अर्थात् शृङ्गार रसही श्रेष्ट रस है।

वे आचार्य प्रभु से और भी कहने लगे—बेटा तुम विवाह करो, कृष्ण के लिये संसार बनाओ। कृष्ण कृपा से तुम्हारी जो

सब सन्तान होगी वे सब जगत में कृष्ण नाम वितरण कर जीव उद्धार करेगें।

जो हो, श्री गुरु-आज्ञा से अद्वैताचार्य ने श्री राधिका का चित्र निर्माण किया। वहां पुरीराज ने बड़े आश्चर्य से श्रीराधिका तथा मदनगुपाल का अभिषेक किया। श्री अद्वैत के घर में यह अपूर्व मूर्ति देख कर शान्तिपुर में सबों को बड़ा आनन्द होता था। बाद में श्रीअद्वैतप्रभु ने पुरीराज से कृष्ण मंत्र लिया।

५

फिर श्री माधवेन्द्र पुरी अद्वैत प्रभु से विदा लेकर उड़ीसा की ओर चले। रास्ते में वे रेमुणा में पहुँचे। तथा श्रीगोपीनाथ जी के दर्शन आदि कर मन्दिर के बाहर एक पर्ण कुटी में रात्रि व्यतीत करते रहे।

इस मन्दिर में नित्य ही गोपीनाथ जी को खीर-भोग लगती थी। पुरी राज ने लोगों से क्षीर की बड़ी प्रशंसा सुन कर सोचा-यदि वे इस क्षीर का स्वाद पाते तो उसी प्रकार की क्षीर का भोग गोपाल को भी लगाते। स्वाद की बात मन में आने से बड़े लज्जित होकर कृष्ण २ स्मरण करने लगे।

पुरी गोस्वामी ने किसी से क्षीर प्रसाद नहीं मांगा। और न किसी ने उन्हें क्षीर दी। किन्तु भक्त वत्सल गोपीनाथ स्थिर न रह सके। वे रात्रि में एक हांडी खीर चोरी कर सिंहासन के नीचे छिपाकर रख दी। शाम को जब मन्दिर के द्वार बन्द होगये और पुजारी सो गये—उस समय श्री गोपीनाथ देव ने पुजारी को स्वप्न में आदेश दिया कि—देखो बाहर मेरा भक्त माधवेन्द्रपुरी ठहरा है। उसको तुमने किसी ने प्रसाद नहीं दिया। मेरे सिंहासन के नीचे एक हांडी खीर रखी है-उसे जाकर माधवेन्द्र को दे आओ। पुजारी तभी स्नान कर मन्दिर में प्रवेश किया और खीर

की हांडी लेकर वाहर आये। पुरी गोस्वामी का नाम ले करवे बुलाने लगे। पुरीराज ने अपना परिचय दिया। पुजारी ने उनके चरणों में प्रणाम कर वह क्षीर की हांडी उन्हें प्रदान की और वोले-आपके समान कोई भाग्यवान नही है। श्री गोपीनाथ ने यह क्षीर की हांडी आपके लिये चोरी करके रखी है। स्वप्न देकर के यह क्षीर आपके पास भेज दी है।

पुरी जी ने वह महाप्रसाद दर्शन कर बड़ा आनन्द प्राप्त किया। उनका अपूर्व कृष्ण प्रेम देख कर पुजारी भी रोने लगा। पुरीराज ने आनन्द पूर्वक यह प्रसाद ग्रहण किया और हांडी को तोड़ कर उसके चूर को अपने वस्त्र में बांध लिया।

इसके बाद उन्होंने विचारा कि प्रातःकाल होते ही यह गोपी-नाथ की क्षीर चोरी की बात प्रकाशित होगी और उनके समीप जनता की भीड़ होगी। इस सन्मान के डर से उसी रात के अन्त में श्री गोपीनाथ देव को प्रणाम कर चल दिये।

ठाकुर आमाके खीर दीलो लोक सव सुनी।
दिने लोक भीड़ होइवे मोर प्रतिष्ठा जानी॥
सेई भये रात्रि शेषे चलिला श्रीपुरी।
सेई खाने गोपीनाथे दण्डवत करी॥

श्री माधवेन्द्र प्रतिष्ठा से वचने के लिये भाग गये किन्तु प्रतिष्ठा ने उनकी सेवा का सुअवसर जान कर उनके आगे २ चलने लगी। उनके पुरी धाम में पहुँचने से पहले ही गोपीनाथ की कृपा की बात वहां लोगों के मुख द्वारा प्रचारित होने लगी। सबने सुना कि श्री माधवेन्द्र पुरी नीलाचल श्री गोपाल देव के लिये चन्दन लेने आये हैं।

नीलाचल में आकर श्री जगन्नाथ के दर्शन कर पुरीराज को वड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। प्रेम के आवेश में कभी भी उठते,

कभी गिरते, कभी हंसते, कभी नाचते और कभी गाते थे। ऐसा अलौकिक प्रेम किसी ने न कभी देखा और न सुना। वैष्णव गण जो जहां थे, वहां से माधवेन्द्र के दर्शन करने आये।

भक्त गणों को जब यह मालूम हुआ कि गोपाल देव के चन्दन लगाने की इच्छा हुई है तभी राजपात्र से जिन जिन का संबन्ध था वे सब चन्दन और कपूर एकत्रित करने की चेष्टा करने लगे। चन्दन और कपूर इस प्रकार एकत्रित हुआ। एक ब्राह्मण और एक सेवक चन्दन और कपूर लेकर पुरीराज के साथ चले। रास्ते में कर वाले उन लोगों को पकड़ेगें इस शंका से राजा का मुक्ति पत्र प्राप्त कर पुरिराज को दिया।

नीलाचल से रवाना होते हुये कितने दिन बाद पुरीराज रेमुणा पहुँचे। उनने गोपीनाथ के पुनः दर्शनकर प्रेम विभोर हुये। गोपीनाथ के सेवक लोगों ने उनका बड़ा सन्मान किया। उनको गोपीनाथ की वही चीर भोग प्रसाद भोजन कराया।

एकबार परम वैराग्य युक्त पुरीराज की बात विचार कर देखो तो सही कि वे बिना खाये रह कर भी किसी से कुछ इच्छा नहीं करते किन्तु गोपाल के चन्दन लगाने की इच्छा हुई है। यह जानते ही उन्होंने कितना प्रयत्न किया। तीन सौ कोस से अधिक चल कर आये हैं। और बहुविध चेष्टा कर प्रायः १ मन चन्दन २० तोला कपूर संग्रह किया। राज आज्ञा प्राप्त करके चुंगी के निकट कोई बाधा नहीं हुयी।

इसके बाद इन्हें यवन राज के भीतर होकर जाना होगा, वहां भी नाना प्रकार की असुविधा हो सकती है। किन्तु उसके कारण से वे चिन्तित नहीं हुये। उन के मन का उत्साह पूर्ववत ही रहा। भक्त प्रवर दुःखी होंगे इस भाव से दयामय गोपाल विचलित हुये।

—६—

उस रात माधवेन्द्र ने उस देव मन्दिर में शयन किया। रात्रि के अन्त में गोपाल ने स्वप्न में उन से कहा—देखो माधवेन्द्र यह सब कपूर और चंदन मुझे प्राप्त हुआ। गोपाल का अंग और मेरा अंग एक ही जानना। गोपीनाथ के अङ्ग में चन्दन लगाने से मेरे शरीर का ताप दूर होगा। इस बात से मनमें कोई चिन्ता मत करना। मेरा वाक्य बिश्वास कर गोपीनाथके अङ्गमें चंदन लगाओ। ऐसा स्वप्न में आदेश पाकर माधवेन्द्र ने श्री गोपीनाथ के श्रीअङ्ग में कपूर और चन्दन लगानेकी व्यवस्था की। नीलाचल से जो दो व्यक्ति कपूर और चन्दन लेकर आये हैं वही चन्दन घिस देगें यह व्यवस्था हुयी।

इसके बाद श्री पुरी गोस्वामी नीलाचल से दक्षिण तीर्थ में मध्वाचार्य के आश्रम गये। इस स्थान पर उन्होंने अपने परम गुरुदेव श्री व्यासतीर्थ के दर्शन किये। इस समय माधवेन्द्र की बडी आयु होने परभी व्यासतीर्थ की आयु ३८ वर्ष की थी। पुरी गोस्वामी ने इस तीर्थ में वर्षाऋतु के चार महीने व्यतीत किये। बाद १४०६ शकाब्द के पौष माह में मथुरा की ओर चले। फिर गिरि गोबर्द्धन जा कर गोपाल जी के दर्शन करेगें इसलिये माधवेन्द्र पुरी की आत्मा निरन्तर उत्सुक थी। उनके साथ रामचन्द्रपुरी, ईश्वरपुरी आदि कई शिष्य थे। पुरीराज ने परमानन्दपुरी को सब जगह हरिनाम प्रचार करने का आदेश दिया। किन्तु उस समय देश में बड़े बुरे दिन थे। संसार भक्ति से विमुख था। परमानन्दपुरी चिन्तित हुये कि किस प्रकार गुरु के आदेश का पालन करेगें। उनकी चिन्ता देखकर श्री माधवेन्द्र बोले कि और अधिक दिन भय का विषय नहीं है। शीघ्र ही श्री भगवान अवतार लेगें एवं सन्यास ग्रहण कर

श्री जगन्नाथ देव के समीप रहेंगें।

कलियुगे संकीर्त्तन धर्म राखिवारे ।
जनमिवे कृष्ण प्रथम सन्ध्यार भीतरे ॥
गौर दीर्घ कलेवर वाहु जानु सम ।
सिंह ग्रीव, गज स्कन्ध, कमल लोचन ॥
करुणा सागर प्रभु प्रेमेर आवास ।
निज करुणाय दया करिवे प्रकाश ॥
मोर भाग्य नाई मुइ देखिव नयने ।
तोर देखा हइले मोरे करिह स्मरणे ॥

श्रीमाधवेन्द्र बड़े ही दुःखी हुये कि भगवान के अवतार ग्रहण करने के समय वे इस जगत में नहीं रहेगें। तभी श्रीमान् परमानन्दपुरी से कहने लगे—बेटा जब तुम साक्षात् भगवान के दर्शन करोगे, उस समय मुझे स्मरण करना। गुरु की आज्ञा पाकर परमानन्द पुरी तीर्थ २ में भ्रमण करने लगे। और माधवेन्द्रपुरी कुछ दिन बाद नीलाचल धाम में आये। इस स्थान पर उन्होंने अपने गुरुदेव श्रीलक्ष्मीपति के दर्शन किये। लक्ष्मीपति के साथ एक १२ वर्ष का बालक था। माधवेन्द्र ने उस वालक के चेहरे में हजारों सूर्य के प्रकाश का तेज दर्शन कर अति आश्चर्य चकित हुये। इस बालक को लक्ष्मिपति ने गौड़ देश से नीलाचल अपने साथ ले आये। यह वालक और कोई नहीं थे श्रीनित्यानन्द हैं। श्रीनित्यानन्द देव पुरीपाद के दर्शन कर मूर्च्छित हुये। माधवेन्द्र नित्यानन्द दर्शन कर चकित हुए।

माधवपुरीरे देखिलेन नित्यानंद ।
ततक्षणे प्रेमे मूर्च्छा होईला निस्पन्द ॥
नित्यानन्दे देखि मात्र श्रीमाधवेन्द्रपुरी ।
पडिल मूर्च्छित हई आपना पासरी ॥

आपस में दोनों के दर्शन से प्रेमाश्रु बहने लगे। दोनों के प्रेम जल से कण्ठ रुद्ध हो गये। श्रीमाधवेन्द्रजी ने नित्यानन्द को गोद में उठा लिया। दोनों के बीच बहुत समय तक कृष्ण कथा की आलोचना हुयी। ईश्वरपुरी, ब्रह्मानन्दपुरी आदि माधवेन्द्र के शिष्य गण गुरुदेव के भाव देख कर श्रीनित्यानंद को बड़े ही शंका युक्त दृष्टिसे देखने लगे। कुछ दिन वहां रहने के बाद लक्ष्मी-पति उन्हे लेकर दक्षिण देश में गये।

७

इसके बाद पुरीगोस्वामी उड़ीसा देश के रेमुणा में आकर बराबर कृष्ण विरह में निमग्न रहते। वृद्धावस्था तथा कृष्ण विरह के कारण उनका शरीर क्षीण होने लगा। उन्हें ज्ञात होने लगा कि यह शरीर अधिक दिन नहीं रहेगा। मेरी मृत्यु का समय निकट है। इस समय वे बराबर गोपाल के विरह में दुःखी रहते। कभी २ वे गोपाल के दर्शन करने के लिये बालकों की भांति रोने लगते और कहते—हा! नाथ अब तुम्हारे दर्शन न कर सकूंगा यह मैं जानता हूँ। दो वर्ष हुये हैं मैं तुम्हें छोड़कर चला आया हूँ। पता नहीं तुम्हारी सेवा किस प्रकार हो रही है। जानता हूं कि अब मेरा मथुरा जाना और आपके दर्शन भाग्य में नहीं है।

इस प्रकार माधवेन्द्रपुरी बराबर विरहमें दुःखी रहते। उनकी यह दुःखित अवस्था देख कर उनके शिष्यगण भी दुःखी रहते किंतु उन्हीं के अनन्य शिष्य रामचन्द्र पुरी बुद्धि विभ्रम के कारण शिष्य होकर गुरुदेव को उपदेश देने को प्रवृत्त हुये। मालूम होता था कि उन्हें गुरुदेव की अन्तर की बात को नहीं समझा। इसी से बोले—गुरुदेव! आप पूर्ण ब्रह्मानन्द हैं यह स्मरण करें। आप ब्रह्मज्ञानी होकर रो क्यों रहे हैं?

रामचन्द्र पुरी तबे उपदेशे ताँरे।
शिष्य हईया गुरु के कहे भय नाहि करे।

तुमी पूर्ण ब्रह्मानन्द करह स्मरण ।
ब्रह्मवित् हइया केन करोहो रोदन ।
सुनि माधवेन्द्र मने क्रोध उपजीलो
दूर दूर पापि बलि भर्त्सना करिलो ।
कृष्ण कृपाना पाईनु ना पाईनु मथुरा ।
आपनि दुःखे मरि, पापिष्ठ दिते आईलो जाला ।
मोरे मुख ना देखावी जा यथि तथि ।
तोरे देखि मैले मोर हवे असद्गति ।
कृष्ण ना पाईनु मरि आपनार दुःखे ।
मोरे 'ब्रह्म' उपदेशे एई छार मूर्खे ॥

पुरीपाद के अनन्य शिष्यगणों ने रामचन्द्र पुरी को वहां से हटा दिया । बाद में विदित होता है कि रामचंद्र पुरी बाद में महाप्रभु के दोषों का अनुसन्धान कर घूम घूम कर प्रचार करने लगे । श्रीपुरीपाद की मृत्यु का समय निकट आने लगा । श्रीईश्वर पुरी गुरुदेव को साक्षात कृष्ण समझते । परम भक्ति से उनकी सेवा करते । गुरुदेव इनको बड़ा स्नेह करते । एक दिन अपने गले की माला उनके गले में पहिना दी । मालूम होता है कि गुरुदेव ने इस माला के साथ अपनी सारी शक्ति इनमें संचार कर दी ।

श्रीमाधवेंद्र निरन्तर श्रीकृष्ण के विप्रलम्भ भाव में विभोर रहते । कृष्णविरह से मोहित प्राण अब जैसे वे नहीं रख सकते । १४०६ शकाब्द सं० १५४० वैशाख पूर्णिमा के दिन कृष्ण विरह में दुःखी होकर कहने लगे—

अयि दीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे ।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्

हे दीन दयालु ! मथुरानाथ ! कब तुम्हारे दर्शन करूँगा ।

तुम्हारे दर्शनों के अभाव में मेरा हृदय बड़ा ही विचलित हो चला है। हे कृपालु अब मैं क्या करूंगा। यह उच्चारण करते २ पुरी गोस्वामी पाद सिद्धि प्राप्त हुए इस मृत्युलोक से मानो एक तारा नष्ट हो गया। श्री गुरुदेव के मृत्यु से ईश्वर पुरीको हृदय से अत्यधिक कष्ट हुआ।

८

श्रीमाधवेन्द्र पुरी एक मध्व सम्प्रदाय के आचार्य थे। किन्तु उनमें एक नवीनता थी। मध्वाचार्य से लेकर लक्ष्मीपति तक इस संप्रदाय के आचार्य गण शृङ्गार रस मयी भक्ति का अनुष्ठान नहीं करते। श्री माधवेंद्र इस शृङ्गाररस मयी भक्ति के नवीन प्रवर्तक थे। इसके बाद श्री ईश्वर पुरी ने अपने गुरुदेव के पथ का अनुसरण किया। इसके बाद श्री महाप्रभु चैतन्य देव ने इस उज्ज्वल रस का समस्त जगत में भली प्रकार प्रचार किया।

जो हो ईश्वरपुरी गुरुदेव की मृत्यु के बाद बड़े दुःखी होकर नाना तीर्थ में भ्रमण करते करते ब्रज धाम आये। बादमें श्रीगोवर्धन में गोपाल देव के दर्शन कर कृतार्थ हुये। और रामदास आदि सेवाईतों को श्री माधवेन्द्र पुरी के मृत्यु का सम्बाद किया। इस संबाद को सुन कर सब बड़े ही दुःखी हुये। श्री ईश्वरपुरी ने कुछ दिन ब्रज धाम में वास किया। बाद में बहुत से तीर्थों में भ्रमण कर गौड़ देश आये। यहां कुछ समय बाद स० १५५५ में यवन बादशाह सिकन्दर लोदी के काजी लोगों ने ब्रज के मन्दिरों के ऊपर अत्याचार करना प्रारम्भ किया। यवनों के उपद्रव के डर से गौडिया पुजारियों ने श्री गोपाल देव को गोवर्द्धन मन्दिर से नीचे उतार कर वहां से तीन मील दूर "टंक घना' नामक घने बन में लेकर गुप्त भाव से सेवा करने लगे। इस समय कुम्मन दास ब्रजवासी गोपाल देव के साथ थे।

उनके रचे हुये पद ब्रज भाषा में पाये जाते हैं। जैसे —

'भावत हे तोह टंकरू घन'

इस स्थान पर गोपाल देव तीन दिन रहे। इधर बादशाह के लोगों ने पूर्णमल राजपूत के द्वारा बनाया हुआ मन्दिर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस यवनों के उपद्रव के शान्त होने पर एक मील दूर श्याम ढ़ाक नामक स्थान पर एक पर्ण मन्दिर निर्माण कर वहां श्री गोपाल देव को स्थापित किया। वहां माधवेन्द्र के प्राण श्री— गोपाल की सेवा रीति अनुसार चलने चगी।

६

दक्षिण भारत में तैलंग देशमें कांकर पाढु नामक एक ग्राम है। यह ग्राम निडाडा भलू रेलवे स्टेशन से १६ मील दूरपर स्थित है। साड़े चार सौ वर्ष पूर्व इस ग्राम में लक्ष्मण भट्ट तथा जनार्दनभट्ट नाम के दो भ्राता बास करते थे वे अंध्र देशी ब्राह्मण तथा बिष्णु स्वामी सम्प्रदायी वैष्णव थे।

इस ग्राम में मुसलमानों के अत्याचार के कारण से वे अग्र हार नामक ग्राम में रहने लगे। कुछ दिन बाद लक्ष्मण भट्ट ने कांकुर पाढु ग्राम में एक मन्दिर बन बाया और वहां रामचंद्र की सेवा स्थापित की। देव सेवा का भार अपने पुत्र नारायण भट्ट को सौंप कर सपत्नी तीर्थ यात्रा पर निकले।

नारायण भट्ट बाल्य काल से ही बड़े भक्त थे। वे बड़ी ही भक्ति से रामचन्द्र की सेवा करने लगे। इस बीच में एक दिन माधवेन्द्र पुरी आये। नारायण भट्ट के कृष्ण प्रेम पर मुग्ध होकर श्रीमाधवेन्द्र ने उनको गोपाल मंत्र की दीक्षा दी। उनको धर्म के विषय पर अनेक उपदेश दिये, तथा उनका नाम केशवपुरी रखा।

केशव पुरी संन्यास ग्रहण करके माधवेन्द्र के साथ काशी आये। इसके बाद केशबपुरी हरिनाम प्रचार करते २ ब्रजधाम में

आये। मथुरा हो कर गंगा किनारे सोरो में रहने लगे। श्रीकेशव-पुरी बल्लभाचार्य के बड़े भाई थे। ये वैष्णव जगत के परम पूज्यपाद एक वैष्णव आचार्य थे। चैतन्यचरितामृत में जो जो लोग मुख्य हरिनाम प्रचारक प्रसिद्ध हैं उनमें ये अन्यतम हैं। इन नौ महापुरुषों की चेष्टा से उस समय भारत वर्ष में वैष्णवधर्म का विशेष प्रचार हुआ। श्रीमाधवेन्द्र पुरी भक्त कल्पतरु के प्रथम अंकुर हैं तथा ये नौ लोग मानो उस वृक्ष के नौ मूल स्वरूप हैं।

जय जय माधवपुरी कृष्ण प्रेम पूर।
भक्ति कल्प तरूर ते हो प्रथम अंकुर॥
श्रीईश्वर पुरी रूपे अंकुर पुष्ट हइलो।
आपनी चैतन्य माली स्कंध उपजीलो॥
निज चिन्त्यशक्त्ये माली हैया स्कंध हय।
सकल शाखार सेई स्कन्ध मूलाश्रय॥
परमानन्द पुरी आर केशवभारती।
ब्रह्मानन्दपुरी आर ब्रह्मानन्दभारती॥
विष्णुपुरी, केशव पुरी, पुरी कृष्णानंद।
नृसिंहानंद तीर्थ आर पुरी सुखानन्द॥
ऐई सब मूल निकसिलो वृक्ष मूले।
ऐई नव मूले वृक्ष करिलो निश्चले॥

१०

इधर लक्ष्मण भट्ट तीर्थभ्रमण करते करते राय पुरके निकट भीमरथी नदी के किनारे चम्पारन में आये। उनकी स्त्री इलमा-गारूने सात माह गर्भ धारण के बाद १५२९ सम्बत वैशाख कृष्णा एकादशी तिथि को शनिवार शतभिषा नक्षत्र में मेष राशी में रात्रि ६ दण्ड ४४ पल के समय पुत्र जन्म दिया। जन्मके समय बालक के कारण कुछ समय मूर्च्छित रहा। किंतु इस बालक की आकृति

बड़ी ही तेज सम्पन्न थी वे श्रीमान् वल्लभ् भट्ट थे ।

लक्ष्मणभट्ट पत्नी एवं नवजात बालक को लेकर निकटवर्ती चौराग्राम में जाकर वास करने लगे । प्रायः एक मास यहां रह कर प्रयाग गये । इस पुत्र के जन्म के तीन वर्ष बाद यह महाशय के एक पुत्र और हुआ इसका नाम रामचन्द्र भट्ट रखा ।

जब बल्लभ की ५ बर्ष की अवस्था हुई उस समय यह महाशय पुत्र को लेकर काशी गये । बहां माधवेन्द्रपुरी के निकट विद्याध्ययनके निमित्त पुत्रको सौंपा । यह महाशय हनुमान घाटके ऊपर रहने लगे । इस प्रतिभा सम्पन्न शिष्य को माधवेन्द्र बड़ा ही प्रेम करते । कभी २ उसे लेते और कृष्ण उपदेश करते । बल्लभाचार्य माधवेन्द्र पुरी के निकट विद्या शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त किया था । उस समय व्यास राय के अन्यतम शिष्य माधवतीर्थ काशी की विद्यापीठ में अध्यापन करते । उनके निकट बल्लभ विद्याशिक्षा प्राप्त करने लगे ।

सात वर्ष अध्ययन के बाद श्री वल्लभभट्ट वेद, पुरान, भागवत, आदि शास्त्रों में व्युत्पत्ति लाभ किया । बाद में १५४२ सं० लक्ष्मण भट्ट ने बल्लभ तथा स्त्री को साथ लेकर तुगंभद्रा नदी के किनारे विजयनगर में जाकर वास करने लगे । यह विजयनगर भिजियाना ग्राम या विजय नगर भारत के मध्य में एक बड़ा ही इतिहास प्रसिद्ध स्थान था । इस स्थान पर चार वैष्णब संप्रदाय के वेन्दान्त भाष्य की शिक्षार्थ भट्ट महाशय ने बल्लभ भट्ट को लगाया । श्रीवल्लभ ने मन लगाकर दो वर्ष में विभिन्न भाष्य समूह का अध्ययन किया ।

जब उनकी उम्र १५ बर्ष की थी उस समय श्रीवल्लभाचार्य देश के श्रेष्ट पण्डित गिने जाने लगे । श्रीवल्लभाचार्य किस से दीक्षा ग्रहण की थी इस विषय पर मत भेद है । बल्लभदिग्वि-

जय ग्रंथ में देखा जाता है कि इन्होंने श्री विल्वमङ्गल ठाकुर से दीक्षा ग्रहण की थी किंतु यह एकदम असम्भव होता है। कारण कि बल्लभ के जन्म के डेड़सौ या दोसौ वर्ष पूर्व विल्वमङ्गलठाकुर हुये। कोई २ कहते हैंकि गदाधरपंडित जी से श्रीबल्लभ ने दीक्षा ली थी और कोई कोई कहते है कि बल्लभ के पिता ने पुत्र को माधवेन्द्र पुरी के हाथ में सांपा। माधवेन्द्र पुरी ने पहले उन को दीक्षा दी फिर विद्या शिक्षा दी।

इस समय वे १५ वर्ष की उम्र में पिता व माता को संग ले कर ब्रजधाम गये। उसके बाद उज्जैन होकर बालाजी तीर्थ में आये। इस स्थान पर सं०१५४६ में लक्ष्मण भट्ट ने देह त्यागा तब वल्लभ दु:खी होकर छोटेभाई व माताको संगमें लेकर अग्रहार ग्राम में जाकर जनार्दन भट्ट के निकट रहने लगे।

११

इसके बाद वे भागवत धर्म के प्रचार में जीवन अर्पण करेंगे- यह निश्चय कर प्रस्तुत हुये। उस समय भारत में सर्वत्र संस्कृत का आदर था। भारत के विभिन्न अंचलों के राजा लोग अपनी २ सभा में श्रेष्ट संस्कृत पण्डित रखते। दूर २ से पण्डित गण राज-सभाओं में विचारार्थ आया करते थे। पण्डितगण राजा एवं धनीलोगों के द्वारा सन्मान प्राप्त करते थे। जिस समय राजसभाओं में दिग्विजयी पण्डित गणों का विचार प्रारम्भ होता तब धनी मानीव्यक्ति व साधारण लोग सभा में उपस्थित होकर वह सब सुनते। भारत में जिस प्रदेश की बात हम आलोचना कर रहे हैं उस समय उस प्रदेश में जो चार दिग्विजयी पण्डित थे, यह अनेक ग्रंथों में उल्लेख है। श्रीबल्लभाचार्य तीर्थयात्रा के लिये माता व जनार्दन भट्ट की अनुमति मांगी। माता इलमागारू उस समय पति शोक

में व्यथित थी। वे पुत्र से बोली कि विजय नगर में तुम्हारे मामा के घर मुझे छोड़ कर तुम तीर्थ यात्रा पर जाना। खुल्ल तात से भागवत की पुस्तक के लिये प्रार्थना की उनने यह ग्रंथ व एक शालिग्राम उन्हें दिया। दामोदर नामक एक संगी माथे के ऊपर भागवत की पुस्तक तथा शालिग्राम लेकर साथ चला। इस प्रकार वे माता को संग लेकर गोदावरी नदी के किनारे विद्या नगर आये।

खुल्लतात श्रीजनार्दनभट्ट विद्यानगर तक उनके साथ आये। ये विद्यानगर व विजय नगर एक स्थान नहीं है। उत्कल देश में गोदावरी के उत्तर तट पर राज महेन्द्री से २०।२५ मील पूर्व में यह विद्यानगर स्थित है। इस समय बल्लभाचार्यजी ब्रह्मचारी के वेष में रहते। उन के शिर पर लम्बी जटा थी। दण्ड तथा कृष्णाजिन चर्म धारण करते। दिन में एक बार स्वयं भोजन बना कर खाते। वे विद्यानगर में लोगों को श्री मद्भागवत ग्रंथ का पाठ सुनाते और भक्ति के नाना प्रकार उद्देश देते। श्रोता गण उनके पाठ और उपदेश से बड़े ही आकर्षित हुये। यह जन श्रुति राजा के पास पहुँची।

तब राजा बड़े सम्मान सहित श्रीबल्लभ को अपने घर लाये तथा राजमहल में सुंदर व्यास आसन दिया और श्री बल्लभ ने उस पर विराज कर एक सप्ताह भागवत का पाठ किया। राजा ने उस वाणी को प्रसन्नता से सुना। भागवत पाठ के अंत में उन लोगों ने आचार्य को सोने के सिंहासन पर बैठा कर अभिषेक किया और बहुत स्वर्ण मुद्रा तथा कीमती वस्तु भेंट की। इस प्रकार विद्यानगर में भागबत धर्म प्रचार करके वे तीर्थ यात्रा को निकले।

सेतुबन्धरामेश्वर, कन्याकुमारी, पाण्ढरपुर, नासिक, त्र्यम्बक,

उज्जैनि प्रभृति नाना तीर्थों में उन्होंने भ्रमण किया। इसके बाद ब्रजधाम में आकर उस समय प्रकट स्थलों के दर्शन किये। गिरि गोबर्द्धन के ऊपर श्रीमाधवेन्द्र पुरी द्वारा स्थापित श्री गोपाल देव के दर्शन कर आनंदित हुये। इस स्थान पर आकर बल्लभाचार्य को मालूम हुआ कि—६।१० वर्ष पहले श्रीमाधवेन्द्र का देहांत हो गया। पुरी जी के शिष्य राम दास से पूरा उनका विवरण शुरू से अन्त तक सुना। और कुछ समय तक इस स्थान पर रह कर गोपाल जी की सेवा करने लगे। इस स्थान पर उन्होंने अपने साथ के भक्तों को गोपाल मन्त्र की दीक्षा दी।

इसके बाद श्री बल्लभ गुजरात, काठियाबाड़ व सिंधु देश भ्रमण करने गये। वहां से उत्तराखण्ड के नाना तीर्थों के दर्शन किये। पुरी धाम जाकर श्री जगन्नाथ जी के दर्शन कर कृतार्थ हुये। फिर विद्यानगर जाकर माता को प्रणाम किया। उस समय के अग्रहार ग्राम में १५५४ सं० वैशाख शुक्ला ३ को आये।

१२

घर आकर वे एक वर्ष रहे। इसी वर्ष फिर नाना तीर्थों के दर्शन करने निकले। प्रथम वे गोदावरी नदी में स्नान करके विद्यानगर में आये। इस स्थान पर होते हुए दक्षिण देशीय तीर्थों के दर्शन को निकले। इधर नाना तीर्थों का भ्रमण कर ब्रजधाम आये ब्रज से मथुरा जाकर उन्होंने जो व्यवस्था देखी, उससे उनका हृदय बड़ा ही दुःखी हुआ। इस समय ब्रजधाम में सुलतान सिकन्दर लोदी के उपद्रव के कारण हाहाकार मचा था। मथुरा में जो हिन्दू मन्दिरों का समूह था, वह सब उसने ध्वंश कर दिये थे। मथुरा में विश्राम तीर्थ पर अत्याचारी लोग किसी को स्नान नहीं करने देते थे। हिन्दू लोगों के ऊपर इस उपद्रव के कारण बल्लभ दुःखी हुए। वे स्वयं विश्राम घाट पर गये, और शिष्यों को तथा

मथुरा वासियों को स्नान का आदेश दिया। श्रीवल्लभ व उनके शिष्य गण स्नान कर रहे हैं यह देख मथुरा वासियों का साहस बढ़ा, एवं वे भी स्नान करने लगे। उसी समय पहरेदार काजी के निकट जाकर यह समाचार दिया कि जो एक ब्रह्मचारी आकर काजी के विरुद्ध व्यवहार कर रहा है। काजी यह घटना सुन कर लोगों को साथ लेकर उस स्थान पर पहुँचा। किन्तु तब स्नानार्थी लोगों का जन समूह एकत्रित हो गया था। सब "जै जमुना मैया की जै" इस प्रकार आकाश भेदी स्वर से स्नान करने लगे। सैकड़ों हजारों लोगों का आगमन देख कर काजी ने उन लोगों को बाधा न देकर घर लौट आया। फिर वहां से वल्लभ गिरि गोवर्धन गये। इस स्थान पर जाकर देखा कि पूर्णमल राजपूत द्वारा निर्मित सं० १५३७ श्री गोपालदेव का मन्दिर ध्वंस हो गया है। मन्दिर की यह अवस्था देख कर वल्लभ के प्राण बड़े दुःखी हुये। उस समय गोपालदेव 'श्यामढ़ाक' नामक स्थान पर थे। श्री वल्लभ गिरिराज के ऊपर भग्न मन्दिर के सामने एक ईटों का छोटा मन्दिर निर्माण कराया। और सं० १५५६ में चैत्र शुक्ला द्वितीया तिथि को श्यामढ़ाक से श्रीगोपाल देव को लाकर इस मन्दिर में स्थापित किया। उन्होंने इसी समय इसी स्थान पर एक सप्ताह श्रीमद्भागवत ग्रंथ का पाठ कर व्रजवासी गणोंको आनंदित किया। गिरि गोवर्धन के नीचे के भाग में आनौर ग्राम में साधू पाण्डे नामक एक व्रजवासी की छोटी कुटिया में इस समय वल्लभाचार्य रहते थे। वहाँ के निवास काल में उन्होंने कई स्तव रचना की। वे ये स्तव श्रीगोपाल देव को सुनाते।

श्री वल्लभ के इस प्रेम दर्शन में वहां के भक्त व साधुगण बड़े मुग्ध हुये। कुम्भनदास, माणिकपांडे प्रभृति कुछ भक्त उनसे श्री गोपाल मंत्र की दीक्षा ली। इस समय वल्लभ ने पुराने मन्दिर के संस्कार में ध्यान दिया। श्रीगोपाल देव की भेंट से जो द्रव्य नित्य

इकट्ठा होगा—उससे श्रीगोपाल के भोग आदि का प्रबन्ध कर जो बचेगा उसके द्वारा थोड़ा थोड़ा मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारंभ हो। पुजारी को उन्होंने इस प्रकार का आदेश दिया। पुजारी लोग बल्लभ को गुरु के समान मानते और उनकी आज्ञानुसार ही चलते। इस प्रकार बल्लभ गोपाल के चरणों में दो वर्ष रहे।

१३

एक बार स्वप्न में श्रीगोपाल देव ने बल्लभाचार्य को विवाह करने का आदेश दिया। उन्होंने गोपाल की यह स्वप्न आज्ञा पाकर प्रयाग, काशी, पुरीधाम दर्शन कर अपने घर अग्रहार वापस आये और वहां से माता को संग लेकर फिर काशीधाम गये। इस स्थान पर उन्होंने सं० १५६० आषाढ़ शुक्ला ५ के दिन देवेन्द्र-भट्ट की कन्या महालक्ष्मी से विवाह किया।

श्रीगोपाल देव बल्लभाचार्य के इष्टदेव थे। गोपाल की श्री विग्रह में बल्लभाचार्य की एकान्तिक भक्ति तथा प्रेम था। उस क्षण सपत्नीक श्रीगोपाल देव के चरणों में प्रणाम करने के कारण गोवर्धन गये और वहां कुछ समय ठहरे।

उनके बड़े सहोदर भाई केशवपुरी ने पहले ही गृह त्याग कर दिया था और वे इस समय सन्यासी हैं। भागीरथी तट पर सौरम जी ग्राम में वे रहते थे। पत्नी के साथ वल्लभ इस स्थान पर आकर-बड़े भाई के चरणों में प्रणाम निवेदन किया। और वहाँ से काशी धाम आये। प्रायः ६ मास रह कर वे और कुछ दिन भिन्न भिन्न तीर्थों के भ्रमण करने लगे। गुजरात हो कर काठिया वाड़ एवं वहां से द्वारका उपस्थित हुये। उसके बाद वे बद्रीकाश्रम दर्शन करने गये। फिर हरिद्वार व कुरुक्षेत्र दर्शन करके ब्रजधाम में आये। बाद में वे प्रयाग गये वहां से पुनः काशीधाम निज घर आये। घर आकर-वे कुछ समय स्थिर होकर रहने लगे।

इस समय काशी धाम में प्रकाशानन्द सरस्वती नामक एक अद्वैतवादी सन्यासी रहते। उनके बहुत से शिष्य थे एवं वे वेदान्त शास्त्र में अद्वैत मत में पारंगत पन्डित थे। वल्लभाचार्य अपनी चेष्टा से उनको भक्तिमार्ग पर नहीं ला सके। इस अद्वैतवादी लोगों से वल्लभ का बराबर संघर्ष होता था इससे सिर्फ अशान्ति बढ़ती थी। वल्लभ के विद्या गुरु माधव सरस्वती प्रभृति सज्जनों ने वल्लभ से कहा इन दन्डी सन्यासी लोगों का मत ठीक नहीं होगा। इनके पास रहने से नित्य वाद विवाद एवं अशान्ति रहेगी। इसलिये आप कहीं और जाकर रहें। वल्लभाचार्य उनकी यह बात अच्छी समझ कर ग्रहण की। वे प्रयाग तीर्थ के उस पार अडेल ग्राम में जाकर गृह निर्माण किया और वहां परिवार के लोगों के साथ रहने लगे। उनकी छोटी एक पैतृकमूर्ति श्रीमदनमोहन देव की थी। सुसराल से होते हुए श्रीगोकुलनाथ जी की एक छोटी मूर्ति लाये। पितृव्य जनार्दन के पास होते हुये श्री-शालिग्राम लाये। उस समय इस घर में स्थापित किये और परम भक्ती के साथ वात्सल्यभाव से सेवा करने लगे। इस समय सं० १५६४ में काश्मीर देश के केशब नामक एक व्यक्ति दिग्विजयी पण्डित के साथ उनका परिचय हुआ। उस समय ये केशव काश्मीरी ने निम्बाकाचार्य का मत ग्रहण नहीं किया था। किंतुगौड़ देश में गमन करने के बाद उन्होंने यह मत ग्रहण किया था। यह दिग्विजयी की अद्भुत शक्ति थी। वे गङ्गा की धारा के समान तेज से सुंदर सुंदर श्लोक रचना कर सकते थे। इन दिग्विजयी के साथ माधव भट्ट नामक एक शिष्य थे। ये विद्वान एवं सुलेख थे। वल्लभाचार्य ने अपनी सहायता के लिये दिग्विजयी से विशेष अनुरोध कर माधव को अपने पास रख लिया। इस स्थान पर वल्लभ के प्रथम पुत्र श्रीगोपीनाथ जी सं० १५७० में उत्पन्न हुये। दो वर्ष बाद सं० १५७२ में काशी के पास चरनार्ट ग्राम में उन

के दूसरे पुत्र विट्ठल नाथ जी उत्पन्न हुये। थोड़े से समय बाद सपरिबार आकर बल्लभ जी फिर अडैल ग्राम में रहे। इस समय वे श्रीमद्भागबत की सुवोधिनी नामक टीका रचना करने लगे और माधव भट्ट उसे लिखने लगे।

१४

१५७२ सं० अगहन मासमें एकदिन संध्या समय आनौर ग्राम में एक व्यक्ति ने संवाद दिया कि पठानगण उस ग्राममें आक्रमण करने के लिये आये हैं। ग्राम बासी लोग उसी समय भागने लगे। श्रीगोपाल के गौडिया पुजारीगण गोपाल को गांठोली गाम ग्वालाह कुंड के ऊपर ले गये उस समय यह स्थान घने जङ्गल से घिरा था। वन के बीच एकान्त स्थान पर पुजारी लोग गोपाल की सेवा करने लगे।

इस समय महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य देव नीलाचल से ब्रज धाम आये। उन्होंने विचारा कि वे गोवर्द्धन पहाड़ के ऊपर नहीं चढ़ेगें। इस लिये गोपाल देव के दर्शन वे किस प्रकार करेगें? उनकी यह अभिलाषा पूर्ण करने के हेतु यह व्यापार हुया। महाप्रभु चैतन्यदेव ने गोपाल कुंड के ऊपर जाकर श्री गोपाल देव के दर्शन किये उसके बाद महाप्रभुजी प्रयाग आये।

जो हो श्री गोपालदेव तीन दिन गोपाल कुंड के ऊपर रहे। पुजारी लोगों ने देखा कि यवन अब नही आये तब चौथे दिन गोपाल को लेकर गोबर्द्धन पहाड़ पर स्थित मन्दिर में ले गये। श्रीमहाप्रभु ने आनन्द पूर्वक यह तीन दिन श्रीगोपाल देव के दर्शन किये। त्रिवेणी के किनारे वे ठहरे। इस समय श्रीरूपगोस्वामी पाद श्रीप्रभु के चरणाश्रित हुये। वल्लभभट्ट उस समय प्रयाग के उस पार अडैल नामक ग्राम में रहते थे। महाप्रभु की आने की बात सुन कर बह भी बहां आये। दोनों

के बीच खूब कृष्ण बार्त्ता हुयी। महाप्रभु का अद्भुत प्रेम वैचित्र्य दर्शन कर बल्लभभट्ट बड़े ही चमत्कृत हुये।

इस समय महाप्रभु के पास श्रीरूपगोस्वामी तथा उनके छोटे भाई 'अनुपम' थे। भट्ट महाशय ने महाप्रभु का निमंत्रण किया। रूप तथा अनुपम दोनों भाई भी प्रभु के साथ गये। बल्लभ बड़े आदर से प्रभु को ले गये। सब नाव में चढ़कर चले। यमुना का नीलवर्ण पानी दर्शन कर महाप्रभु प्रेमावेश में विभोर होगये। और वे हुँकार कर यमुना में कूद पड़े। तब सब ने प्रभु को पकड़ कर नाव पर बैठाया और प्रभु वहां प्रेमानन्द में नृत्य करने लगे। नाव डगमगाने लगी। नौका में जल आने लगा। महाप्रभु उद्दाम प्रेम छोड़ नहीं सके, भट्ट महाशय बड़े ही चिन्तित हुये।

जो हो किसी प्रकार अरैल ग्राम के घाट पर आकर नाव लगी। भट्ट महाशय स्वयं प्रभु के चरण धोने लगे और पादोदक सबने मस्तक पर लगाया एवं अपने दोनों पुत्रों को लेकर प्रभु के चरणों में गिरे। इसके तीन दिन बाद प्रभु को नौका में बैठा कर प्रयाग के दशाश्वमेध घाट पर पहुँचा आये। फिर महाप्रभु वहां से काशी होते हुए नीलाचल आये।

१५

इधर बल्लभाचार्य जी को सम्बाद मिला कि काशी में प्रकाशानन्द सरस्वती श्रीमहाप्रभु की शक्ति संस्कार से कृष्ण प्रेम में विभोर होकर प्राबोधानन्द नाम धारण कर वृन्दाबन यात्रा को गये। तब उनकी आनन्द की सीमा नहीं रही। इस समय साधू व भक्त नीलाचल जा रहे थे, यह सम्वाद पाकर बल्लभाचार्य नीलाचल जाने के लिये प्रस्तुत हुये। इस समय उन्होंने श्रीमद्-भागवत के प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं दशम स्कंध व एकादश

स्कंध की टीका रचना की थी । यह सुवोधिनी टीका साथ लेकर बल्लभाचार्य ने नीलाचल की यात्रा की ।

रास्ते में काशी धाम में वे कुछ समय ठहरे । इस स्थान पर "पत्रावलम्बन" ग्रंथ की रचना की । इस ग्रंथ को कागज पर लिख कर उन्होंने विश्वनाथ जी के मन्दिर के द्वार पर लगा दिया । मायावादी संन्यासी लोगों ने उसे पढ़ कर कोई आपत्ति नहीं की । इसके बाद बल्लभाचार्य यहां से होते हुये सं० १५७४ पुरीधाम आये । पुरी में जगन्नाथदेव के चरण दर्शन कर महा प्रभु की बन्दना करने लगे । प्रभु ने भी उनको भक्त समझ कर आलिंगन किया और आदर सहित अपने पास बैठाया ।

इस समय कृष्ण सम्बन्धी अनेक वार्ता करके बल्लभाचार्यजी अपने स्थान पर लौट आये । एक दिन महाप्रभु भक्त समूह के साथ बैठे थे, इस समय बल्लभाचार्य ने उस स्थान पर आकर अपनी बनाई श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी नामक टीका दिखाई और उनसे सुनने का अनुरोध किया । महाप्रभु ने उत्तर दिया— श्रीधर स्वामी कृत जो भागवत की टीका है उसके ऊपर कोई टीका हो ही नहीं सकती है । श्रीधरस्वामी की टीका सर्वोत्कृष्ट है । बल्लभाचार्य ने उत्तर सुन कर महाप्रभु से गर्व पूर्वक कहा— मैंने भागवत में स्वामी की बात का खंडन किया है । स्वामी जी के वाक्य सब जगह एक नहीं हैं इसी कारण मान्य नहीं कर सकता । महाप्रभु ने हँस कर कहा—

प्रभु हाँसि कहे "स्वामी ना माने जेई जन ।
वेश्यार भितरे तारे करिये गणन ॥"

श्रीधरस्वामी विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य थे । बल्लभभट्ट भी उक्त सम्प्रदाय के परवर्ती आचार्य हुए । एक सम्प्रदाय के पूर्व वर्ती आचार्य के बाक्य खंडन करना अति गर्हित है । महाप्रभु के

इस श्लेष वाक्य का यह तात्पर्य था। जो हो भट्ट महाशय ने निज अपराध स्वीकार किया। प्रभु भी उनसे प्रसन्न हुये। भट्ट महाशय ८, १० मास तक पुरी धाम में निबास किया। वे महाप्रभु और भक्त गणों के अनुगत हो कर रहते। इसके बाद उन्होंने महाप्रभु से अनुमति प्राप्त कर ब्रज धाम आये।

भट्ट महाशय पहले तो बाल गोपाल मंत्र से दीक्षित थे। महा प्रभु व भक्तगणों के उज्वल रसाश्रित भजन आलोचना कर उन्होंने मत परिवर्तन किया। अब उन्होंने किशोर गोपाल की उपासना प्रारंभ की। गदाधर पण्डित इस क्षेत्र में उनके पथ प्रदर्शक हुये।

१६

श्रीमहाप्रभु तथा श्री बल्लभाचार्य सम सामयिक धर्म प्रवर्त्तक थे। दोनों के सिद्धान्तों में क्या २ वैशिष्ट्य है यह आलोचना का विषय है। दोनों ही भक्तिमार्ग के उपदेष्टा हैं इसमें कोई संदेह नहीं। बल्लभाचार्य के नाम से पुष्टिमार्ग का प्रचार है। यह धीरे २ सर्वत्र प्रचारित हुआ। बास्तवमें बल्लभ के वशं जात परवर्ती आचार्य-गणों ने इस पुष्टि मार्ग का प्रचार एवं विकास किया था। बल्लभा-चार्य के पुरी रहने के समय यह विदित होता है कि—

पुरी धाम में उन्होंने तीन ग्रंथ रचना की। एक का नाम कृष्णाष्टक और एक का नाम "कृष्णप्रेमामृत" और दूसरे का नाम "मथुराष्टकम्"। श्री वल्लभ ने महाप्रभु का अनुसरण कर श्रीराधागोविन्द के भजन में प्रवृत्त हुये थे। श्री कृष्णप्रेमामृत' ग्रंथ में उसका प्रमाण है।

बल्लभाचार्य पुरी से ब्रज आकर श्रीगोपालदेव के मन्दिर में रहने लगे। इससे पहले सं० १५५५ मन्दिर जो विध्वंश किया गया था यह पहले ही लिखा जा चुका है मन्दिर के कितने ही अंश की मरम्मत हुयी। बल्लभाचार्य ने अब गिरि गोबर्द्धन जा

कर मन्दिर का सम्पूर्ण निर्माण किया एवं एक उत्सव कर १५७६ सं० वैशाख मास की शुक्ला तृतीया के दिन मन्दिर में श्रीगोपाल देव को विराजमान किया।

कुछ दिन बाद भट्ट महाशय निजी घर अरैल ग्राम में आये और वहां कनिष्ठ पुत्र विट्ठल नाथ जी का उपनयन संस्कार किया। काशीधाम के व्यासराय तीर्थ के शिष्य माधवसरस्वती के पास बिद्याभ्यास करने के निमित्त उनके पास विट्ठलनाथ को छोड़ कर चले आये। फिर गिरिराज गोबर्द्धन में आ गये एवं उसी स्थान पर गोबर्द्धन के निकट एक घेरा निर्माण कर वहां भजन करने लगे। उस समय आचार्य किसी से अधिक बात नहीं करते। निरन्तर एकान्त में बैठ कर भजन करते एवं राधा भाव में विभोर रहते। कुछ दिन बाद इस स्थान पर "कृष्णदास" नामक एक गुजरात देश का व्यक्ति आया और बल्लभाचार्य से दीक्षा ग्रहण की। आचार्य ने उसे प्रवीन तथा कार्य में दक्ष समझ कर श्रीमन्दिर का संकीर्तन आदि का काम सौंपा। गोबर्द्धन के नीचे कुछ जमीन खरीद कर कुछ घर बन बाये। इस स्थान पर यतीराज माधवेन्द्र पुरी रहते। इस कारण इस स्थान का नाम 'यतिपुरा' रख दिया। अभी भी यह स्थान यतिपुरा के नाम से प्रसिद्ध है

इस समय सूरदास जी नामक एक भक्त गोपालजी के नये मन्दिर में रहने लगे। वे बहु प्रकार से सुललित पद रचना कर सुमधुर कण्ठ से श्रीगोपाल देव को सुनाते।

कुछ समय बाद श्रीबल्लभाचार्य अपने घर गये। १५८५ सं० में जेष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी का विवाह किया और शीघ्र ही द्वारका यात्रा को गये। द्वारका से लौटने पर गोपीनाथ जी को निजी गद्दी का मालिक बनाया। और वहां से प्रयाग आये। यहां पर

मध्वाचार्य सम्प्रदाय के आचार्य श्री व्यासराय तीर्थ के शिष्य नारायणेन्द्र तीर्थ से विधि पूर्वक सन्यास दीक्षा ली। सन्यासी होने पर उनका नाम पूर्णानन्द तीर्थ हुआ। १५८७ सं० वैशाख कृष्णा दसमी के दिन यह सन्यास ग्रहण का कार्य सम्पादित हुआ। अब श्री आचार्य ने दण्ड, कमण्डल एवं काषाय वस्त्र धारण किये। फिर उन्होंने पुरी धाम की यात्रा की एवं बनारस में कुछ समय रहे। इस काशीधाम में सं० १५८७ आषाढ़ मास में तृतीया के दिन श्री बल्लभाचार्य ने भागीरथी के किनारे हनुमान घाट पर इह लीला समाप्त की।

१७

श्री बल्लभाचार्य के तिरोभाव के बाद, उनका रखा हुआ कृष्णदास, श्रीगोपाल के मंदिर का सर्व सर्वा बन गया। मन्दिर में यह व्यक्ति स्वेच्छाचार करने लगा। गौड़ीया पुजारी लोग गुरुदेव श्री माधवेन्द्रपुरी के आदेशानुसार श्रीगोपाल देव की भोग सामग्री एवं भेट जो आती, वह प्रति दिन खर्च कर डालते। संग्रह करके रखते नहीं। कृष्णदास उनसे असन्तुष्ट होता। कृष्णदास आगरे से एक नर्तकी को लाकर मन्दिर में नृत्य कराता। गंगाबाई नाम की एक क्षत्रीय स्त्री से उसका अवैध प्रणय सम्बन्ध हो गया था। उसने उसे मन्दिर में रख लिया था इस कारण उसका बराबर गौड़ीया पुजारी लोगों से वाद बिवाद होता।

कृष्णदास अति धूर्त प्रकृति का व्यक्ति था। एक दिन वह एकाएक अरैल ग्राम पहुँचा। उस स्थान पर बल्लभाचार्य के पुत्र गोपीनाथ जी एवं विट्ठलनाथ जी को खबर दी कि गौड़ीया पुजारी मेरी कोई बात नहीं सुनते हैं। वे भेट का एकत्रित धन द्रव्यसंभार व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। उनको और मन्दिर में नहीं रखा जायगा। यह अनुमति आप लोगों से लेने आया हूँ।

यह सब सुन कर दोनों भाई एक मत होकर उसकी सहायता के लिये मथुरा के अपने दो परिचित लोगों को पत्र लिख दिया। कृष्णदास मथुरा आकर कितने ही दुष्ट प्रकृति के लोगों को संग लेकर गोवर्धन जाकर एक षडयन्त्र रचा। जब गौड़ीया पुजारीगण गोवर्धन के ऊपरी भाग में गोपाल की सेवा पूजा कर रहे थे। उसी समय पीछे से होकर रुद्र कुन्ड के ऊपर गौड़ीया वैष्णवों के रहने का स्थान गोपाल पुरा ग्राम में आग लगा दी। पुजारी लोगों के दौड़ कर आते आते ग्राम जल कर राख हो गया। फिर कृष्ण दास ने गोपाल का मन्दिर अपने कब्जे में कर लिया। पुजारी लोगों को फिर मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया और उन्हें लाठी से मार भगाया, इनमें से ३-४ लोगोंने पुजारी लोगों को घायल कर दिया। पुजारी लोग बड़ी आफत में पड़ गये और उनका सब जल गया। फिर पुजारी लोगों ने वृन्दाबन जाकर श्रीरूपगोस्वामीजी से सारा हाल कहा।

किन्तु इस समय सब वृन्दाबन में हाहाकार कर रहे थे। कुछ समय पहले यह सम्बाद आया कि श्री महाप्रभू चैतन्य देव अन्तर्ध्यान हो गये। इसीलिये गोपाल के पुजारियो को कोई उत्तर नहीं दे सका। वहाँ से पुजारी लोग मथुरा आकर राज दरवार में यह विषय रखा। इस समय कृष्णदास मथुरा में था। उसने राज कर्मचारियों को धन के द्वारा अपने वश में कर रखा था।

कुछ दिन बाद श्रीबृन्दाबन में श्रीरूप व श्रीसनातन-गोस्वामी ने सुना कि श्रीमाधवेन्द्र पुरी का गोपाल मन्दिर मथुरा के राजकर्मचारी अपने कब्जे में लेगें। यह संवाद मिलने पर श्रीरूपगोस्वामी मथुरा आये। पहले से ही राज-कर्मचारी इनका सम्मान करते। इस समय वल्लभाचार्य के दोनों पुत्र मथुरा में उपस्थित थे। राजकर्मचारियों से गोपाल

मंदिर का भार लेकर बल्लभाचार्य के पुत्रों को मालिक कर दिया। और गौडिया पुजारियों की भोजन व वस्त्र की व्यवस्था कर के बृन्दाबन आ गये। इधर बल्लभाचार्य के पुत्रों ने कृष्णदास को गोपाल के मन्दिर का अधिकारी करके अपने निवास स्थान अडैल ग्राम में बापस आगये। १५६० सं० यह घटना घटी थी। कृष्ण-दास फिर स्वेच्छाचार करने लगा। रामदास नामक एक गुजराती ब्राह्मण को गोपाल की पूजा के लिये नियुक्त किया।

चार्तुमास में गोपीनाथ अडैल से बराबर आकर गोपाल मंदिर में निवास करते। कोई उनसे दीक्षा लेता तो उसे गोपाल मंत्र देते। बल्लभाचार्य जी के अन्तर्ध्यान होने के १० साल बाद गोपीनाथजी ने पुरी जाकर देह त्यागा। इसके बाद श्रीबिट्ठलनाथ जी गद्दी के अधिकारी हुये। इस समय पुरुषोत्तमजी नाम के गोपीनाथ जी के एक पुत्र थे। पुरुषोत्तम को गद्दी का मालिक न बना कर स्वयं विट्ठलनाथ जी गद्दी के अधिकारी हुये। गोपीनाथ जी की पत्नी से विट्ठलनाथजी का झगड़ा प्रारम्भ हुआ। किन्तु १७।१८ वर्ष अवस्था में ही पुरुषोत्तमजी की मृत्यु हो गयी और कृष्णदास विट्ठलनाथ जी को गोपाल मन्दिर में नहीं लाना चाहता था। स्वयं गोपाल मंदिर का सर्वेसर्वा होकर काम चलाने लगा।

वि० सं० १६१६ में अकबर बादशाह की सेना ने अडैल ग्राम पर आक्रमण किया। इस उपद्रव के भय से बिट्ठलनाथजी कुटुंब सहित बांधेगढ़ में जाकर रहने लगे। यहां उनके बड़े पुत्र गिरधर जी के एक पुत्र हुआ उसका नाम मुरलीधर जी रखा। यहां से कुछ दिन बाद विट्ठलनाथ जी गड्डा शहर में जाकर रहने लगे। गड्डा की रानी दुर्गावती थी। दुर्गावती ने विट्ठलनाथजी का बड़ा सम्मान किया तथा अनेक धन प्रदान किये। कुछ दिन बाद यहां मुसलमानों का उपद्रव आरम्भ होने पर कुटुम्ब सहित १६२२ वि०

सं० में ब्रज में आये। वर्तमान गोकुल यहां नहीं था। इस स्थान पर बल्लभाचार्य ने पहले कुछ जमीन खरीद कर रखी थी। उसी स्थान पर विट्ठलनाथ जी ने रहने के लिये गृह निर्माण करना आरम्भ किया। इस स्थान का नाम गोकुल रखा। कुछ दिन बाद महावन के जमीदार से झगड़ा प्रारम्भ हुआ, और मथुरा जाकर सतघरा नामक स्थान पर रहने लगे। इस समय विट्ठलनाथ ने अपने बड़े पुत्र गिरधर जी को घर का कार्य भार सौंप कर यहां से गोबर्द्धन गोपाल मंदिर में गये। यहां कृष्णदास का बुरा व्यवहार देखकर बिट्ठलनाथ असन्तुष्ट होकर कुछ श्लेष करने लगें जिससे कृष्णदास ने क्रोधित होकर उन्हें मन्दिर में आने को मना कर दिया और यहां तक कि गोपाल के दर्शन तक बंद कर दिया।

बिट्ठलनाथ जी स्वनाम धन्य व्यक्ति थे। उनकी रचित श्रृङ्गार-रस, मंडन दानलीला, राधाष्टक प्रभृति ग्रंथ अभी हैं। गोपाल जी के दर्शन न होने पर वे गुजरात चले गये। इधर बिटठलनाथजी के पुत्रों ने उक्त खबर सुन कर बड़ा दुःख पाया। बृन्दाबन में रूप—गोस्वामी व जीवगोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रति कृष्णदास का ऐसा व्यवहार सुन कर बड़े दुःखी हुये। बिट्ठलनाथ जी के पुत्र गिरधर जी ने राजकर्मचारियों को सारा बृतान्त सुनाया। इसके बाद राजकर्मचारियों की सहायता लेकर गिरधरजी गोपाल जी को मथुरा लाकर वि० सं० १६२३ फाल्गुन शुक्ला ५ शुक्र को अपने घर लाकर स्थापित किया एवं एक मास तक नाम संकीर्तन कराया। मथुरा में श्री गोपाल देव के आगमन की बात सुन कर बृन्दावन से श्रीगोस्वामी पाद लोग दर्शन को आये। गिरधरजी ने उनका बड़ा सत्कार किया, तथा एक मास तक उन्हें अपने घर में रखा।

तवे रूप गुसांई सब निज जन लिया।
एक मास दर्शन करिलो मथुराये रहिया॥

संगे गोपाल भट्ट दास रघुनाथ ।
रघुनाथ भट्ट गोसाईं आर लोक नाथ ॥
भूगर्भ गोसाईं आर श्रीजीव गोसाईं ।
श्रीयादवाचार्य आर गोविन्द गोसाईं ॥
श्रीउद्धब आर माधव दुई जन ।
श्रीगोपालदास आर दास नारायण ॥
गोविन्द भक्त आर काला कृष्णदास ।
पुण्डरीकाक्ष ईशान आर लघु हरिदास ॥
ऐई सब मुख्य भक्त लइया निज संगे ।
श्रीगोपाल दर्शन करिलो बहु रंगे ॥

विट्ठलनाथ के पुत्र गण प्रेम सहित गोपालजी की सेवा अपने घर में करते। इस समय विट्ठलनाथजी गुजरात से वापस मथुरा आये । गिरधरजी ने गोबर्द्धनसे गोपालजी को मथुरा लाकर इस स्थान पर उनकी सेवा की व्यवस्था की किंतु विट्ठलनाथजी को यह अच्छा नहीं लगा। क्यों कि इस समय यहां अनेक विधर्मियों का वास था। कब क्या उपद्रव हो जाय नहीं कहा जा सकता। ऐसा विचार कर उन्होंने सं० १६२४ में वैशाख शुक्ला ४ के दिन श्री-गोपाल को पालकी में बैठा कर गोपाल मन्दिर में लेगये। इस समय विट्ठलनाथजी के पुत्रगण वात्सल्य भाव से सेवा करने लगे। कुछ समय बाद एक कुए में गिरने के कारण से कृष्णदास की अकाल मृत्यु हो गई। इसके बाद सं १६२६ में विट्ठलनाथजी स्थायी रूप से गोकुल में आकर रहने लगे। अब इस स्थान पर नया गोकुल बना। गोकुल में रहने के समय उनका प्रभाव प्रतिष्ठित लोगों पर होने लगा। गुजरात से अनेकों वड़े २ धनिक लोग यहां आकर रहने लगे।

इस समय तक विट्ठलनाथ जी ने ये सब ग्रंथ रचना कर ली

थी। उनसे विदित होता है कि श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु के मत से उनके मत में कोई भेद नहीं था। विदित होता है कि लोगों ने महाप्रभु के अनुयायी होकर किशोरभाव से श्रीराधा—कृष्ण की उपासना करते। इसके बाद विट्ठल जी के सात पुत्र ने क्रमतः पुष्टि सम्प्रदाय स्थापित की विट्ठलनाथजी के अन्यतम पुत्र गोकुल-नाथजी ने वल्लभ के मत का बहुत परिवर्तन किया। गोकुलनाथजी के अनेक शिष्य वर्गों की हस्त लिखित पुस्तकें अब भी गुजरात में हैं। उस समस्त के पढ़ने से विदित होता है कि यह जो आजकल पुष्टिमार्ग की धारा चल रही है वह गोकुलनाथ जी महाराज ने स्थापित की है। गोकुलनाथ जी का दूसरा नाम 'वल्लभ' है। शिष्य वर्ग उनसे वल्लभाचार्य कहते हैं और वल्लभाचार्य को सिर्फ 'आचार्य' नाम से पुकारते। उन्होंने महाप्रभु के मत से इस मत में बड़ा प्रार्थक्य प्रदर्शन किया है एवं मत में उन्होंने सम्पूर्ण नया आकार प्रदान दिया है। गोकुलनाथजी के जीवन चरित्र में विदित होता है कि ये गोपाल देव की सेवा प्रणाली सं० १६२७ नये प्रकार से अपने मन के अनुसार से चलना प्रारम्भ किया। गोपालदेव के नाम परिवर्तन कर श्रीगोवर्द्धननाथ जी नाम रखा।

जो हो विट्ठलनाथ जी तथा उनके पुत्रों ने गोवर्द्धन नाथ का बड़ा वैभव बढ़ाया। गिरधर जी ने अपने जेष्ठ पुत्र मुरलीधर को अकबर बादशाह की सेवा में नियुक्त कर दिया। मुरलीधर जी दिल्ली में बादशाह को पानी पिलाने के कार्य पर थे। मुरलीधरजी के बादशाह के पास रहने के कारण से विट्ठलनाथजी एवं गिरधर जी का राज दरबार में सम्मान बढ़नें लगा। सं० १६३१ में गोकुल का सम्पूर्ण अधिकार विट्ठलनाथ जी को बादशाह ने प्रदान किया। तब से उन्हें सब गोकुल के गुसाईं कहने लगे। बादशाह ने विट्ठल नाथजी को 'आगा' की पदवी दी थी। सं० १६४० में विट्ठलनाथ जी ने अपने सातों पुत्रों को सात सेवाओं का भार दिया एवं

गोपालदेव की सेवा का भार सब को देकर सं० १६४२ में माघी कृष्णा सप्तमी के दिन उन्होंने देह रक्षा की।

इसके कुछ वर्ष बाद सं० १७२५ में ब्रजमण्डल में सब देव मन्दिरों के ऊपर सम्राट औरंजेब का भीषण अत्याचार होने लगा। इस कारण बल्लभाचार्य के वंश के गोस्वामी लोगों ने वहां के ब्रजवासी लोगों की सहायता से गोवर्द्धन नाथजी को सं० १७२५ आश्विन पूर्णिमा की रात्रि को गुप्त रूप से बैलगाडी में बैठाकर गोवर्द्धन गिरि से प्रस्थान किया। आगरा, कोटा, बूंदी, जोधपुर, चांपा, सेनी, कृष्णगढ़ आदि स्थानों पर होते हुये उदयपुर की राजधानी से 'सिंहार' नामक स्थान पर आये। इस स्थान पर उदयपुर के राना सुजनसिंह जी ने बड़ा सम्मान प्रदर्शन कर एक मन्दिर बनवा दिया।

इस मन्दिर में गोवर्द्धन नाथजी को प्रतिष्ठित किया गया। सेवा के लिये राना ने अनेक भू सम्पत्ति प्रदान की। सेवाकार्य सुचारु रूप से चलने लगा। इस स्थान पर अनेक लोग आकर निवास करने के कारण श्रीनाथद्वारा नामक नगर में परिणत हो गया। यहां गोवर्द्धननाथ जी श्रीनाथजी नाम से प्रसिद्ध हुए। बहुदिनों के पश्चात् १८५८ संवत् में इन्दौर राज्य के हालकर के उदयपुर तथा नाथद्वारा आक्रमण करने पर श्रीनाथजी को "घसिया" ग्राम में लिया गया था। छै वत्सर पश्चात १८६४ संवत् में श्रीनाथ जी को लाकर फिर नाथ द्वारा में प्रतिष्ठित किया गया। आज तक भी नाथद्वारा में माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी के प्राणनाथ श्रीगोपालदेव श्रीनाथ जी नाम से विराजमान हैं।

युगलाष्टकं

बृन्दावनविहाराढ्यौ सच्चिदानन्दविग्रहौ ।
मणिमण्डपमध्यस्थौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥ १ ॥
पीतनीलपटौ शान्तौ श्यामगौरकलेवरौ ।
सदा रासरतौ सत्यौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥ २ ॥
यमुनोपवनावासौ कदम्बनवमन्दिरौ ।
कल्पद्रुमवनाधीशौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥ ३ ॥
भावाविष्टौ सदा रम्यौ रासचातुर्य्यपण्डितौ ।
मुरलीगानतत्वज्ञौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम ॥ ४ ॥
यमुनास्नानसुभगौ गोवर्द्धनविलासिनौ ।
दिव्यमन्दारमालाढ्यौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥ ५ ॥
मंजरीरञ्जितपदौ नासाग्रगजमौक्तिकौ ।
मधुरस्मेरसुमुखौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

वृन्दाबन में विहारशील, सत्-चित्-आनन्दमय-विग्रह वाले, मणिमय मण्डप के बीच में विराजमान श्रीराधा कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥ पीताम्बर तथा नीलाम्बर धारि, शान्त, श्याम तथा गौराङ्ग स्वरूप, निरन्तर रास क्रीडा परायण, सत्यरूप श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ यमुना के उपवन समूह में निवासकारि, कदम्ब के मन्दिर वाले अर्थात् कदम्बबन विहारी, कल्पबृक्ष मय श्रीवृन्दावन के अधीश्वर, श्रीराधा कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ । भावाविष्ट, सदा मनोहर, रासक्रीडा की चतुरता में परम पण्डित, मुरली गान में तत्वज्ञ, श्रीराधा कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥ यमुना के जलमें विहारशील, गोवर्द्धन विलासी, दिव्य मन्दार पुष्पों की माला से युक्त, श्रीराधा कृष्ण को मैं नमस्कार

अनन्तकोटिब्रह्मण्डे सृष्टिस्थित्यन्तकारिणौ ।
मोहनौ सर्वलोकानां राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ।। ७ ।।
परस्पररसाविष्टौ परस्परगणप्रियौ ।
रससागरसंपन्नौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ।। ८ ।।
इति श्रीमाधवेन्द्रपुरीचरणविरचितं युगलाष्टकं ।।

करता हूँ ।।५।। मञ्जीर से शोभित चरण कमल वाले, नासाग्र में गजमौक्तिक धारि, मधुर मन्दहास्य से युक्त सुन्दर मुख वाले, श्रीराधा कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ६ ।। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के सृष्टि-स्थिति-संहार करने वाले, समस्त लोक मोहितकारि, श्रीराधा कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ७ ।। दोनों दोनों के रस में आविष्ट, दोनों दोनों के गणों में प्रिय, रस के सागर स्वरूप श्रीराधा कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ८ ।।

इति श्रीमाधवेन्द्रपुरीचरणविचरित युगलाष्टक का अनुवाद

समाप्त ।

बाबा कृष्णदास जी